

कलम का मज़दूर प्रेमचन्द



राजकमल प्रकाशन



कलम का मज़दूर प्रेमचन्द

मदनगोपाल

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन (प्रा०) लि०
दिल्ली ६

प्रथम संस्करण १९६५

मुद्रक
नवीन प्रेस दिल्ली ६

मुन्नो को

प्रस्तावना

इस पुस्तक को प्रकाशित करते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। यह पुस्तक लगभग २० वर्षों के परिश्रम का परिणाम है। इस पर काम तभी आरम्भ किया था जब मैंने १९४२-४३ में प्रेमचन्द के जीवन तथा कृतियों पर एक छोटी-सी परिचयात्मक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी थी। (अंग्रेजी में इस विषय पर यह पहली पुस्तक थी।) महायुद्ध के दिनों में कागज़ की किल्लत थी और मैंने अपनी पुस्तक के लिए जितनी सामग्री इकट्ठी की थी उसका पूरी तरह प्रयोग न कर पाया था।

उसी समय मुझे यह ध्यान आया था कि प्रेमचन्द जी का युग बीता जा रहा है। उनके जितने जीवित मित्र या सहयोगी थे उनके पास अभी तक उनके पत्र मिल सकते हैं तथा उनसे प्रेमचन्दजी के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान भी प्राप्त हो सकता है। उसी समय तथा अगले कुछ वर्षों में मैंने लमही कानपुर लखनऊ बनारस इलाहाबाद बस्ती हैदराबाद लाहौर बम्बई आदि की यात्रा की। बहुत से पत्र या उनकी प्रतिलिपियों के अतिरिक्त और भी बहुत-सी सामग्री प्राप्त की। इस सामग्री तथा 'हंस' और 'ज़माना' के प्रेमचन्द अंकों और शिवरानीदेवी जी की 'प्रेमचन्द घर में' के आधार पर मैंने एक पुस्तक तैयार की। एक और पुस्तक केवल प्रेमचन्द जी के पत्रों के संकलन के रूप में तैयार की। दूसरी पुस्तक को अब अमृतरायजी दो भागों में छाप रहे हैं। पहली पुस्तक पड़ी रही। उसे अन्तिम रूप देने का अवकाश ही न मिला। इस पुस्तक में मैंने प्रेमचन्द जी की सभी कृतियों—उपन्यासों कहानियों नाटकों निबन्धों—का सारांश देने की चेष्टा भी की थी। परिणामतः पोथी बहुत मोटी बन गई। आज से दो एक साल पहले मुझे यह ध्यान आया कि प्रेमचन्द की कृतियों के सारांश की आवश्यकता किसी विदेशी भाषा में तो हो सकती है पर हिन्दी या उर्दू के पाठकों को उनकी कृतियों से परिचित कराने का प्रयत्न तो ऐसा ही होगा जैसे 'उलटे बाँस बरेली

का'। यह सोचकर मैंने किताब को नया रूप दिया। प्रेमचन्दजी की कृतियों के अंश निकालकर अब यह पुस्तक तीन सौ अठ्ठाइस पन्ने की बनी है। जो मेरी रुचि के अनुसार ही है।

इस पुस्तक की तयारी में मैंने उपलब्ध सामग्री का भी आवश्यकतानुसार उपयोग किया है जिनमें हंस तथा जमाना के प्रेमचन्द अंक, शिवरानीदेवी की पुस्तक प्रेमचन्द घर में तथा कुछ ऐसे निबन्धों के संग्रह भी हैं जिनमें प्रेमचन्द की कृतियों पर सामयिक आलोचनायें छपी हैं। ये लेख कितनी ही बार छप चुके हैं। पिछले कुछ वर्षों में तो जमाना के प्रेमचन्द अंक में छपे लेखों का हिन्दी रूपान्तर भी छपा है। अभी तक प्रेमचन्दजी पर जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं उन सबमें इन्हीं पुस्तकों तथा प्रकाशनों का प्रयोग किया गया है। उर्दू लेखकों ने जमाना के विशेषांक को अपनी कृतियों का आधार बनाया और हिन्दी लेखकों ने हंस के विशेषांक को। इन सब प्रकाशनों में एक विशेष त्रुटि यह रही है कि तिथियों और घटनाक्रम में स्पष्ट परस्पर विरोध दिखाई देता है। आलोचकों ने भी आँख मींचकर इन्हीं पुस्तकों का अनुकरण किया। मैंने भी अपनी १९४४ में छपी पुस्तिका में तिथियाँ डा० इन्द्रनाथ मदान के 'थीमिज़ ट्रेण्डस इन माडर्न हिन्दी लिटरेचर' से ली थीं। अन्य लेखकों ने भी इसी प्रकार तिथियाँ जहाँ जैसे मिलीं वैसे ही स्वीकार कर लीं।

और तो और स्वयं प्रेमचन्दजी ने एक ही घटना के बारे में भिन्न पत्रों तथा लेखों में विभिन्न तिथियाँ दी हैं। इन तिथियों के ग़लत होने का पता तब चला जब उनके पत्रों के आधार पर जाँच-पड़ताल की गई। एक कठिनाई यह भी सामने आई कि बहुत से पत्रों पर तिथि ही नहीं दी गई, केवल स्थान का ही ज़िक्र है। इसलिए मैंने उनकी सर्विस-बुक तथा सामयिक मासिक पत्रों की तलाश की, जहाँ उनकी वे कहानियाँ सबसे पूर्व छपी थीं और जिनका ज़िक्र पत्रों में है। यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि उन सामयिक मासिक पत्रों में से कुछ की पूरी फाइलें भी दुर्लभ हैं, एेसे पत्र जो इस शताब्दी के आरम्भ में निकलते थे।

इस तरह प्रत्येक तथ्य तथा तिथिक्रम की जाँच-पड़ताल का काम बहुत सरल सिद्ध नहीं हुआ। कई बार सिर्फ एक कहानी की तिथि या पत्र की तारीख निश्चित करने में कई वर्षों की फाइलें उलटनी पड़ीं। परन्तु खोज और जाँच पड़ताल का जीवनी लिखने के कार्य में निस्सन्देह विशेष महत्व है, यह बात मुझे पुस्तक लिखते हुए खूब अनुभव हुई है। इस पुस्तक में मैंने यथासम्भव घटनाओं की वही तिथियाँ स्वीकार की हैं जिनकी पुष्टि इस प्रकार की खोज से हुई है।

मैंने प्रेमचन्द द्वारा लिखे गए पत्रों के अंशों का खूब प्रयोग किया है। जिन पत्रों के अंश यहाँ उद्धृत किये गए हैं उनकी मूलप्रति या प्रतिलिपि उपलब्ध करने के लिए मैंने लगभग गत २० वर्षों में भारत के विभिन्न भागों में सैकड़ों व्यक्तियों से पत्र व्यवहार किया है या निजी भेंट की है। मेरा पत्र-संकलन-कार्य साहित्यिक क्षेत्रों में चर्चा का विषय भी रहा है। इस सम्बन्ध में १९५२ के आजकल (अक्तूबर) में मेरा एक इंटरव्यू भी छपा था। पत्रों के मिलने का क्रम अब भी चल रहा है। कहीं-कहीं से मूल पत्र या उनकी प्रतिलिपियाँ अब भी उपलब्ध हो जाती हैं।

संकलन का एक महत्वपूर्ण भाग दयानारायण निगम ने १९४१ में कानपुर में मुझे दिया था जब मैं अपनी पुस्तिका लिख रहा था। इन सारे पत्रों के अंश 'ज़माना' में छप चुके थे। निगम साहब ने दूसरे पत्रों को देने का वायदा भी किया था परन्तु उनको प्राप्त करने के लिए मुझे अपनी प्रकाशित पुस्तक की एक प्रति दिखाना ज़रूरी बतलाया था। जब मेरी पुस्तक तैयार हुई तब दुर्भाग्य से उनका देहावसान हो चुका था। १९५१ में निगम के पुत्र से मैंने फिर पूछा। उन्होंने बतलाया कि उन्हें शेष पत्रों के बारे में कुछ पता नहीं है। जिस समय निगम साहब ने मुझे पत्र दिए थे उसी समय ज़माना के मैनेजर ने भी मुझे बारह पत्र दिए थे। लगभग फिर उसी समय मुझे दुर्गासहाय सरूर को लिखा प्रेमचन्द का पत्र मिला। इमतियाज़ अली ताज ने लाहौर में मुझे अपने घर पर चवालिस पत्रों की नक़ल करने की सुविधा १९४१-४२ में दी थी। १९४८ में भाई भीष्म साहनी ने मुझे इन पत्रों की हिन्दी प्रतिलिपि भी दी जिनसे मैंने अपनी उर्दू की प्रतिलिपि में संशोधन किया। उन्हीं दिनों इन्द्र वसावड़ा को लिखे दस पत्रों की प्रतिलिपि भी मुझे साहनीजी ने दी। उपेन्द्रनाथ अश्क ने प्रेमचन्द के चार पत्रों की प्रतिलिपि अपने हाथ से करके मुझे दी थी (गत वर्ष उन्होंने बतलाया कि मूलप्रति अब गुम हो चुकी है।) दिल्ली में जैनेन्द्रकुमार जैन ने मुझे बयालीस पत्रों की फाइल दी जिन्हें मैंने नक़ल करके आशानुसार फ़ाइल लौटा दी। (अब मुझे पता लगा है कि कई वर्ष बाद कोई सज्जन उस संग्रह को ले गये और वापस नहीं किया।) प्रेमचन्द के कौशल भाई महताबराय ने भी मुझे छः पत्र दिए। माणिकलाल जोशी ने एक पत्र स्वयं भेजा। विष्णु प्रभाकर ने भी तीन पत्र दिए। ऐसे ही रामनाम मुंशी ने व चार पत्र मुझे दिए जो प्रेमचन्द ने उन्हें टाइप करके भेजे थे। इसी तरह बनारसीदास चतुर्वेदी ने मुझे सोलह पत्रों की प्रतिलिपियाँ (जो प्रायः पत्रों में हैं) दीं। इनके अतिरिक्त शिवरानी देवी विनोदशंकर व्यास रामचन्द्र टण्डन इन्द्रनाथ मदान अमृत आनन्द

कौसल्यायन हिसामुद्दीन गौरी मानवराव जोशी अख्तरहुसैन रायपुरी इत्यादि का लिखे गए पत्र विभिन्न पत्रिकाओं या पुस्तकों में छप चुके हैं मैंने उन्हें वहीं से उद्धृत किया है।

मेरा पत्र संग्रह लगभग तीनसौ पृष्ठों का बन गया था। कई मित्रों तथा प्रकाशकों ने आग्रह किया कि मैं इसे छपवा डालूं। अस्सी पृष्ठों की भूमिका के साथ संग्रह १९५१ में तयार था। दो वर्ष बाद भाई चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने इसका संशोधन भी कर लिया था परन्तु मैं कुछ सज्जनों को लिखे गए पत्रों की प्रतिलिपि की आशा कर रहा था विशेषतया दुलारेलाल भार्गव तथा के० एम० मुंशी। इस बीच में दो वर्ष हुए भाई अमृतराय ने मेरे पत्रों की एक प्रतिलिपि मांगी और इनके प्रकाशन की एक योजना बनाई जिसके अनुसार प्रेमचन्द के पत्रों का संग्रह उनके (अमृतराय) तथा मेरे नाम में दो भागों में प्रकाशित होगा—(क) निगम को और (ख) दूसरे मित्रों को लिखे गए पत्र। अमृतराय ने बतलाया है कि यह संग्रह शीघ्र ही पाठकों को उपलब्ध हो सकेगा। इस पुस्तक में मैंने उनका महत्वपूर्ण भाग उद्धृत कर लिया है। इसके लिए मैं उन व्यक्तियों का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे मेरे संकलन इत्यादि के काम में सहायता दी। पत्रों की प्रतियाँ देनेवालों के अतिरिक्त जो व्यक्तियों ने मुझे विशेष सहायता दी—अमरशहीद भगतसिंह के साथी शान्तिकुमार (पानीपत) ने तथा मास्टर गुरबख्शसिंहजी ने। इस कार्य में प्रेमचन्द के ज्येष्ठ पुत्र श्रीपतराय से मुझे प्रोत्साहन मिलता रहा है। इसके लिए तथा पत्रों कहानियों निबन्धों के अंश उद्धृत करने की आज्ञा के लिए मैं उनका विशेषतया आभारी हूं।

इनके अतिरिक्त इस पुस्तक को सम्पूर्ण करने की प्रेरणा मुझे श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार श्री जगन्नाथ प्रसाद तथा कमर रईस से मिली। मैं उनका विशेषतया कृतज्ञ हूं। मारवाड़ी लाइब्रेरी श्री महावीर जैन लाइब्रेरी तथा दिल्ली यूनीवर्सिटी लाइब्रेरी उस्मानिया यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी हैदराबाद (श्री मुहम्मद इस्माइल) अदबीयाते उर्दू हैदराबाद से भी मुझे मूल्यवान सहायता मिली है। उनका भी मैं धन्यवाद करता हूं।

नई दिल्ली
१५ अगस्त १९६२

—मदन गोपाल

सूची

१

पटवारी का पोता

प्रेमचन्द का जन्म लमही गाँव में श्रावण बदी १० सम्वत् १९३७ शनिवार (३१ जुलाई १८८०) को हुआ। लमही गाँव मौजा मँड़वा बनारस से आजमगढ़ जाने वाली सड़क पर बनारस से चार मील की दूरी पर बसा है। छोटा सा गाँव है। ज्यादा लोग कुर्मी हैं। एक चौथाई घर कायस्थों के हैं। इन्हीं में से एक कायस्थ घराने में प्रेमचन्द का जन्म हुआ। मकान कच्चा था जिसे प्रेमचन्द के दादा पटवारी गुरसहायलाल ने इस गाँव में आते ही बनवाया था।

अपने जमाने के और पटवारियों की तरह गुरसहायलाल खाते-पीते आदमी थे। साठ-सत्तर बीघा जमीन भी खरीद ली थी। यह पटवारगिरी की कमाई थी। गुरसहायलाल का कुटुम्ब प्रतिष्ठित ही रहा होगा। पटवारीजी पियक्कड़ भी थे। उस जमाने में दो आने की बोतल मिलती थी। ज्यों ही नशा मिलता अपनी पत्नी पर पिल पड़ते। पत्नी बहुत भली थी। चुपचाप मार खाती रहती। सबसे बड़ा लड़का कौलेश्वरलाल तीसरा लड़का अजायबलाल और चौथा लड़का उदितनारायणलाल माँ को पिटती हुई देखते और सहमकर चुप हो जाते। परन्तु दूसरा लड़का महाबीरलाल जो बहुत तगड़ा था बाप को पकड़कर बैठा देता। अतएव महाबीरलाल माँ-बाप का चहेता था। मुंशी गुरसहायलाल ने लगभग सारी जमीन उसी के नाम करवा दी थी। कुल छः बीघा जमीन अपने नाम रखी और बाद में वह भी महाबीरलाल के पुत्र बलदेवलाल के नाम करवा दी थी।

गुरसहायलाल की मौत के बाद महाबीरलाल को एक चचेरे भाई ने सब्ज बाग दिखाकर साठ बीघा जमीन हथिया ली। इस प्रकार सारे परिवार के पास केवल छः बीघा जमीन रह गई जो बलदेवलाल के नाम थी।

कौलेश्वरलाल डाकखाने में मुंशी बने। उन्होंने अपने छोटे भाई अजायब-लाल को भी अपने ही महकमे में भर्ती करवाया। और अजायबलाल ने अपने

छोटे भाई उदितनारायणलाल को भी डाकखाने म नौकरी दिलवाई । कौलेश्वर-लाल तीस साल की उम्र म ही परलोक सिधार गए । उनकी विधवा कुछ दिन लमही म रही फिर बच्चो को चुनार ले जाकर रहने लगी । उसका लडका मातीलाल भी तीस साल की उम्र का होकर मर गया और अपनी विधवा और चार बच्चो को पीछे छोड गया ।

उदितनारायणलाल जो डाकखाने म मुशी बन गए थ, सरकारी गबन क सिलसिले म सात साल की सजा पा गए । जब लौट तो शर्म के मारे मुँह न दिखा सके और फिर उनका पता न चला । उनका लडका आवारा था और वह भी घर से भाग गया । दो लडकियों म स एक की शादी हो चुकी थी दूसरी की शादी होनी थी ।

इतने बडे परिवार का निर्वाह छ बीघा जमीन से तो न हो सकता था । कमाने वाले ले देकर एक अजायबलाल थे । उनकी तनख्वाह बीस-पच्चीस रुपये होगी । इसी म स वह कुछ रुपया अपनी विधवा चाची को भेजते कुछ मोतीलाल की विधवा को भेजते कुछ उदितनारायण की विधवा और बच्चो को भेजते । उनकी लडकी की शादी भी की । अजायबलाल अपन नातदारो का भी कुछ-न-कुछ सहायता देत रहते । दो रिश्तेदारो को उन्होने डाकखान म नौकरी दिलवाई ।

बीस पच्चीस रुपये म यह सब कुछ कैसे करते यह अचम्भे की बात है । बालाई आमदनी का कोई जरिया न था मगर महगाई नही थी । गाँव म रहते थे । वहाँ क बहुत से लोग अपने प्रदेश से बाहर जाकर कमाते थे और मनीआडर घर भेजते थे । अनपढ कुनिबा के नाम पर चिट्ठी पत्री लिखना उनके नाम आए पत्र पढना और मनीआर्डर इत्यादि भरना—यह सब काम अजायबलाल करते थे । इनके बदले म उन्हे गेहू चावल सब्जी तथा दूध मिल जाता था ।

अजायबलाल की सेहत अच्छी नही थी । कमजोर थ । परन्तु अव्वल दर्जे के भलमानस । जहाँ तक हो सकता भला करते । गाँव म उनकी इज्जत थी । पच बनाए जाते तो ईमानदारी से अपना फसला देत । गीता और दूसरे शास्त्रो का पाठ करते थे परन्तु रस्मी धम म उन्हे विश्वास न था । पडो-पुजारियो म भी विश्वास न था । कहते धम का मूल आधार सदाचार है धार्मिक अनुष्ठान तो महज ढकोसला है । अजायबलाल को बीवी भी अपने ही ढग की मिली थी । *आनन्दीदेवी देखन म तो बहुत खूबसूरत थी ही (इससे अधिक खूबसूरत औरत* खानदान मे नही आई) । अपने पति की तरह वह भी हर एक की सहायता करन को तत्पर रहती । किसी स झगडा नही करती और न ही किसी की चुगली । उसके पिता कारिन्दा थे । उन्हे लिखने का शौक भी था । आनन्दीदेवी थोडी

पढ़ी लिखी थी, पर जितना ज्ञान उस था उससे घर की दूसरी औरतों को भी उसने लाभ पहुँचाया।

आनन्दीदेवी के पहले दो लड़कियाँ हुई और दोनों मर गई। लमही की औरतों ने कहा कि उसके मायके में पैदा हुए बच्चे बहुत दिन जिन्दा नहीं रह सकते। तीसरी बार जब बच्चा पैदा होने वाला था आनन्दीदेवी मैके नहीं गई लमही में ही रही। इस बार भी लड़की पैदा हुई परन्तु वह जिन्दा रही। उसका नाम सुग्गी पड़ा। इसके जन्म के सात आठ वर्ष बाद आनन्दी देवी के एक लड़का हुआ। यही बच्चा आगे चलकर प्रेमचन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ। घर का दिया गया नाम धनपतराय था और उसके ताऊ उसे प्यार से नवाब पुकारते थे। जब धनपतराय ने पहले-पहल लिखना शुरू किया, तब उन्होंने नवाबराय नाम को ही अपनाया था।

२

बचपन और विद्यार्थी जीवन

अजायबलाल डाकखाने की नौकरी के सिलसिले में कई छोटे-मोटे गाँवों और क़स्बों में रहे। कभी वह बाँदा, आजमगढ़, बस्ती और गोरखपुर और कभी लखनऊ के आसपास काम करते रहे। उनकी पत्नी, मुन्शी धनपतराय और कभी-कभी भाइयों के बच्चे भी उनके साथ ही रहते। परन्तु अधिकांशतः बाक़ी बच्चे लमही के घर में दूसरे भाइयों के कुटुम्ब के साथ रहते थे। जब कोई धनपतराय से पूछता कि तुम कितने भाई हो, तो वह उत्तर देते, "हम पाँच भाई हैं।"

इनमें से एक तो प्रेमचन्द के हमजोली थे। दोनों इकट्ठे मौलवी साहब के पास पढ़ने जाते। मौलवी साहब के स्कूल का तथा वह क्या और कैसे पढ़ाते थे इस सबका रोचक वर्णन प्रेमचन्द ने अपनी कहानी 'चोरी' में किया है। कैसे चचेरे भाई ने एक रुपये की चोरी की, कैसे धनपतराय और भाई ने इस रुपये को भुनवाया, कैसे चचा को पता लगा, कैसे उन्होंने स्कूल में आकर लड़कों को पकड़ा और घसीटकर ले गए और कैसे अपने लड़के को पीटा। आनन्दी ने देवर को अपने लड़के को पीटते देखकर धनपतराय को भी पीटना शुरू किया। चची ने धनपतराय को छुड़ाया। "मुझे ही क्यों छुड़ाया, अपने बच्चे को क्यों नहीं छुड़ाया, यह मैं नहीं जान सका। शायद मेरी दुर्बलता पर उन्हें दया आ गई हो।" धनपतराय दूसरे बच्चों की तरह चंचल थे। 'प्रेमचन्द घर में' नामक पुस्तक में शिवरानीदेवीजी ने इसके कितने ही उदाहरण दिए हैं। दादी को धनपतराय से बहुत प्यार था। वह उसे कहानियाँ सुनाती थी।

एक बार जब अजायबलाल जमानियाँ में नियुक्त थे, प्रेमचन्द को कहानियाँ सुनाने वाला एक पासी हरकारा मिला। कई वर्षों के बाद इसी हरकारे के नाम पर उन्होंने 'कज़ाकी' नामक कहानी लिखी। इस हरकारे का नाम भी कज़ाकी ही था। यह कभी उन्हें बिरहे गाकर सुनाता और कभी कहानियाँ सुनाता। उसे

चोरी डाके मार-पीट और भूत-प्रेत की सैकड़ों कहानियाँ याद थीं। मैं ये कहानियाँ सुनकर विस्मयपूर्ण आनन्द में मग्न हो जाता। उसकी कहानियों के चोर और डाकू सच्चे योद्धा होते थे जो अमीरों को लूटकर दीन-दुखी प्राणियों का पालन करते थे। मुझे उन पर घृणा के बदले श्रद्धा होती थी। कजाकी बच्चों को कंधे पर बैठाकर दौड़ता। उनको खुश करने के लिए वह अमरूद गाजर और ईख लाता। एक बार एक हिरन के बच्चे को पकड़ने के प्रयत्न में बड़ा समय लग गया। कजाकी डाकखाने देर से पहुँचा। देखा अजायबलाल आगबबूला हैं। कजाकी निकाल दिया गया। धनपतराय को इस पर बड़ा तरस आया। दूसरे दिन उन्होंने कजाकी को बुलवाया और भंडारे से आटा दाल चावल लेकर दिया। उन्हीं के आग्रह पर कुछ दिनों बाद कजाकी को दोबारा रख लिया गया।

जब धनपतराय की आयु सात या आठ वर्ष की थी अजायबलाल इलाहाबाद थे। आनन्दीदेवी बीमार पड़ीं। वह छः माह बीमार रहीं। सुग्गी जिसका कुछ दिन पहले ही विवाह हो गया था आई। शादी वहीं थी। धनपतराय के चचेरे भाई दवाई का प्रबन्ध करते थे। स्वयं धनपतराय माँ के सिरहाने बैठे पंखा झलते। आनन्दीदेवी के सिरहाने के पास ही एक शक्कर की बोतल रखी रहती थी। माँ के सो जाने पर धनपतराय चुपके से शक्कर पर हाथ साफ करते रहते। माँ की हालत खराब होती गई। मरने से पहले धनपतराय उनके चचेरे भाई और सुग्गी का हाथ अजायबलाल के हाथ में देकर बोलीं "ये तीनों बच्चे तुम्हारे हैं।"

आनन्दीदेवी मर गईं। सब रोये। धनपतराय को तब समझ में नहीं आया था कि लोग रो क्यों रहे हैं। और जब समझ में आया तो वह इतना रोये कि अपने साहित्य में आजीवन मातृ-प्रेम का वर्णन करते रहे।

आनन्दीदेवी की मृत्यु के बाद सुग्गी अपनी ससुराल गई। दादी भी बीमार पड़ीं और लमही चली गईं। 'भैया' दूध में शक्कर डालकर धनपतराय को पिलाते। धनपतराय को माँ की याद आती और वह एकान्त में बैठकर रोते।

कुछ महीनों के बाद अजायबलाल स्वयं बीमार पड़े और लमही गये। धनपतराय के लिए फिर वही मौलवी साहब वाला स्कूल। पुराना कार्यक्रम चलने लगा। गुल्ली डंडा, मटर तोड़कर खाना और ईख तोड़कर चूसना। फिर अजायबलाल का तबादला जोमनपुर का हुआ। जोमनपुर पहुँचे। डेढ़ रुपये महीने किराये का मकान था। निहायत गन्दा। अजायबलाल [illegible] गये। [illegible] उसी के दरवाजे पर एक कोठरी थी जो धनपतराय को मिली।

अजायबलाल ने देखा कि बगैर बीवी के रहना आसान नहीं। उन्होंने दोबारा शादी की। बीवी के साथ उसके छोटे भाई विजय बहादुर भी आए। यह धनपतराय से थोड़े बड़े थे। दोनों में खूब पटती। प्रेमचन्द विमाता को चाची कहते थे। परन्तु चाची दुर्गति करती। अजायबलाल विवश थे। बुढ़ापे की शादी थी। जवान पत्नी बूढ़े पति पर रोब जमाती। इसी कारण अजायबलाल की माता तो लमही लौट आईं और वहीं थोड़े दिनों बाद वह मर भी गईं।

चाची घर की मालकिन बनी। धनपतराय से उनका व्यवहार ऐसा था कि घर से भागने को जी करता। जिस कोठरी में सोते थे उसका दरवाज़ा बाहर ही खुलता था। जाने आने पर कोई रोक थाम नहीं थी। धनपतराय ने खुद लिखा है कि वह शाम ही से एक तम्बाकूवाले के मकान पर चले जाया करते थे। इस तम्बाकूवाले का लड़का धनपतराय का सहपाठी था। तम्बाकू के बड़े-बड़े काले पिण्डों के पीछे बैठकर तम्बाकूवाला और उसके कई मित्र हुक्का पीते और 'तिलिस्म ए-होशरुबा' की अटूट तिलस्मी कहानियाँ सुनते। इस ग्रंथ के १७ भाग निकल चुके थे। एक एक भाग बड़े आकार के दो-दो हज़ार पृष्ठों से कम न होगा। और इन १७ भागों के उपरान्त उसी पुस्तक के अलग अलग प्रसंगों पर पचीसों भाग छप चुके थे। जिसने इतने बड़े ग्रन्थ की रचना की उसकी कल्पना शक्ति कितनी प्रबल होगी इसका केवल अनुमान किया जा सकता है। कहते हैं ये कथाएँ मौलाना फ़ैज़ी ने अकबर के विनोदार्थ फारसी में लिखी थीं। इतनी वृहद् कथा संसार की किसी अन्य भाषा में शायद ही हो। पूरा एनसाइक्लोपीडिया समझ लीजिए। धनपतराय इन कहानियों में डूब गए। सुनने का यह क्रम लगभग एक साल तक चलता रहा। धनपतराय की चेतना जगी और इस उम्र में रोमांटिक कहानियों का जो बीज पड़ा वह आगे चलकर एक विशाल वृक्ष बना।

फिर अजायबलाल का तबादला गोरखपुर को हुआ। मकान यहाँ भी उसी तरह का था। इसमें भी दरवाज़े वाली एक कोठरी थी। धनपतराय मिशन हाई स्कूल में छठे दर्जे में दाखिल हुए।

यहीं एक पुस्तक बेचने वाले से मित्रता हुई। इसका नाम था बुद्धिलाल। अब प्रेमचन्द के शब्दों में—

मौलाना शरर, पं० रतननाथ सरशार, मिर्ज़ा रुसवा, मौलवी मुहम्मद अली हरदोई निवासी उस वक्त के सर्वप्रिय उपन्यासकार थे। इनकी रचनाएँ जहाँ मिल जाती थीं स्कूल की याद भूल जाती थी और पुस्तक समाप्त करके ही

दम लेता था। उस ज़माने में रेनाल्ड के उपन्यासों की धूम थी। उर्दू में उनके अनुवाद धड़ाधड़ निकल रहे थे और हाथों हाथ बिकते थे। मैं भी उनका आशिक़ था। स्व० हज़रत रियाज़ ने रेनाल्ड की एक रचना का अनुवाद हरम सरा के नाम से किया था। उसी ज़माने में लखनऊ के साप्ताहिक अवध पंच के सम्पादक स्व० मौलाना सज्जाद हुसैन ने जो हास्यरस के अमर कलाकार हैं रेनाल्ड के दूसरे उपन्यास का अनुवाद धोखा या 'तिलस्मी फ़ानूस' के नाम से किया था। ये सारी पुस्तकें मैंने उसी ज़माने में पढ़ीं। और पं० रतननाथ सरशार से तो मुझे तृप्ति ही न होती थी। उनकी सारी रचनाएँ मैंने पढ़ डालीं। रेती पर एक बुकसेलर बुद्धिलाल नाम का रहता था। मैं उसकी दूकान पर जा बैठता था और उसके स्टाक से उपन्यास ले-लेकर पढ़ता था मगर दूकान पर सारे दिन तो बैठ न सकता था इसलिए मैं उसकी दूकान से अंग्रेज़ी पुस्तकों की कुंजियाँ और नोटस लेकर अपने स्कूल के लड़कों के हाथ बेचा करता था और इसके मुआवज़े में दूकान से उपन्यास घर लाकर पढ़ता था। दो-तीन वर्षों में मैंने सैकड़ों ही उपन्यास पढ़ डाले होंगे। जब उपन्यासों का स्टाक समाप्त हो गया तो मैंने नवलकिशोर प्रेस से निकले हुए पुराणों के उर्दू अनुवाद भी पढ़े।

इसी ज़माने में धनपतराय के दिल में लिखने का शौक़ भी पैदा हुआ। मैं लिखता और फाड़ता, लिखता और फाड़ता। कभी-कभी मेरे पिताजी हुक़्क़ा पीते-पीते मेरी कोठरी में भी आ जाते थे। जो कुछ मैं लिखकर रखता वह देखते और पूछते नवाब क्या लिख रहे हो? मैं शर्म के मारे गड़ जाता। मगर इस विषय में पिताजी को कोई दिलचस्पी न थी। एक तो उन्हें काम के मारे छुट्टी ही न मिलती थी दूसरे इस विषय के वह जानकार भी न थे।

धनपतराय की पहली रचना इन्हीं दिनों लिखी गई। यह नाते के एक मामूँ के रोमांस पर व्यंग्य था। ये मामूँ अधेड़ उम्र तक बिन ब्याहे रहे। नातेदारों ने उनमें कोई दिलचस्पी न ली। आख़िर वह एक चमारिन पर आशिक़ हो गए। चमारिन चंचल थी। एक दिन मामूँ ने उसे पकड़ लिया। गाँव के चमार लोग ताक में थे। दरवाज़ा तोड़ डाला गया और उनकी गालियाँ भी गई। जूता छतरी छड़ी लात घूँसा सभी का प्रयोग किया गया। एक महीने तक हल्दी और गुड़ पीते रहे। दुर्घटना की ख़बर गोरखपुर पहुँची। धनपतराय ने भी सुनी। कुछ दिन बाद वही नाते के एक मामूँ गोरखपुर आए और अलायबलाय के साथ ठहरे। गाँव वालों पर इस्तग़ासा दायर करना चाहते थे। इससे पहले यह नाते के मामूँ धनपतराय को उपन्यास पढ़ते देखकर बिगड़ा करते थे और

मजाकबसाल से निकायन की धमकी देते थे। जब धनपतराय को नाते में मामू की उक्त कमज़ोरी का पता लग गया तो अब वह क्यों उनका रौब मानने! उनको शर्मिन्दा करने के लिए धनपतराय ने मामूँ की दुर्घटना पर एक नाटक लिख मारा। मित्रों को सुनाया। सबको खूब पसन्द आया। इसके बाद उस नाटक को साफ़-साफ़ लिखकर मामू साहब के सिरहाने रख स्कूल का रास्ता लिया। स्कूल पहुँचकर इसी बात पर सारा दिन सोचते रहे। नाटक पढ़कर मामूँ साहब क्या कहेंगे? साँझ को घर पहुँचकर देखा कि मामू साहब चारपाई पर नहीं हैं। कमरे में सन्नाटा छाया है। मामूँ साहब के कपड़े लत्ते गठरी जूता सब नदारद हैं। मालूम हुआ मामू साहब एक जरूरी काम से गाँव चले गए हैं भोजन तक नहीं किया। मैंने आकर सारा कमरा छान मारा मगर मेरा ड्रामा—मेरी वह पहली रचना—कहीं न मिली। मालूम नहीं मामू साहब ने उसे चिराग अली के सुपुर्द कर दिया या अपने साथ स्वर्ग ले गए।

विनोद के लिए धनपतराय को गुल्ली-डंडे का बड़ा शौक था। यह खेल सब खेलों से अच्छा लगता न लॉन की जरूरत न कोर्ट की न नेट की न थापी की। मज़े से किसी पेड़ से एक टहनी काट ली गुल्ली बना ली और दो आदमी भी आ गए तो खेल शुरू हो गया बचपन की मीठी स्मृतियों में गुल्ली ही सबसे मीठी है। वह प्रातःकाल घर से निकल जाना वह पेड़ पर चढ़कर टहनियाँ काटना और गुल्ली डण्डे बनाना वह उत्साह वह लगन वह खिलाड़ियों के जमघटे वह पदना और पदाना वह लड़ाई झगड़े वह सरल स्वभाव जिसमें छूत अछूत अमीर-गरीब का बिलकुल भेद न रहता था जिसमें अमीराना चोचलों के प्रदर्शन की अभिमान की गुंजाइश ही न थी पिताजी चौकी पर बैठे वेग से रोटियों पर अपना क्रोध उतार रहे हैं अम्मा की दौड़ केवल द्वार तक है लेकिन उनकी विचारधारा में मेरा अन्धकारमय भविष्य टूटी हुई नौका की तरह डगमगा रहा है। और मैं हूँ कि पदाने में मस्त हूँ, न नहाने की सुधि है न खाने की। गुल्ली है तो ज़रा-सी पर उसमें दुनिया भर की मिठाइयों की मिठास और तमाशों का आनन्द भरा हुआ है।

रामलीला भी विनोद का एक विशेष अवसर था। मुझे रामलीला में आनन्द आता था। आनन्द तो बहुत हल्का-सा शब्द है। वह आनन्द उन्माद से कम न था। संयोगवश उन दिनों मेरे घर से बहुत थोड़ी दूर पर रामलीला का मैदान था और जिस घर में लीला-पात्रों का रूप रंग भरा जाता था वह तो मेरे घर से बिलकुल मिला हुआ था। दो बजे दिन से पात्रों की सजावट होने लगती थी। मैं दोपहर ही से वहाँ जा बैठता और उत्साह से दौड़-दौड़कर

छोटे मोटे काम। एक कोठरी में राजकुमारों का शृंगार होता था। उनकी देह में रामरज पीसकर पोती जाती, मुँह पर पाउडर लगाया जाता और पाउडर के ऊपर लाल, हरे-नीले रंग की बुंदकियाँ लगाई जाती थीं। सारा माथा, भौंहें, गाल, ठोड़ी बुंदकियों में रंग उठती थी। एक ही आदमी इस काम में कुशल था। वही बारी-बारी से तीनों पात्रों का शृंगार करता था। रंग की प्यालियों में पानी लाना, रामरज पीसना, पंखा झलना मेरा काम था। जब इन तैयारियों के बाद विमान निकलता तो उस पर रामचन्द्रजी के पीछे बैठकर मुझे जो उल्लास, जो गर्व, जो रोमांच होता था, वह अब लाट साहब के दरबार में कुर्सी पर बैठकर भी नहीं होता।

विनोद का एक और विशेष साधन पतंग उड़ाना था। इसका भी धनपतराय को शौक था। घरवालों की आँख बचाकर कनकौए उड़ाने में बहुत सारा समय व्यतीत होता। माँझा देना, कन्ने बाँधना, पतंग टूर्नामेंट में भाग लेने के लिए भी तैयारी होती। विजयबहादुर के साथ लाल मियाँ के मैदान को जाते और कनकौओं को देखते। कनकौआ लूटने के लिए बेतहाशा भागते। आँखें आसमान की ओर होतीं और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मन्द गति से झूमता पतन की ओर चला जाता। साथ-साथ बालकों की एक पूरी सेना लग्गे और झाड़दार बाँस लिए उसका स्वागत करने को दौड़ती। किसी को अपने आगे-पीछे की खबर नहीं। सभी मानो पतंग के साथ ही आकाश में उड़ रहे हों, जहाँ सब-कुछ समतल है, न मोटर-कारें हैं, न ट्राम है, न गाड़ियाँ।

धनपतराय (प्रेमचन्द) के इस व्यसन का वर्णन 'बड़े भाई साहब' शीर्षक कहानी में मिलता है। पतंग उड़ाने का शौक तो था, मगर पैसे पास न होने से, क्योंकि अजायबलाल की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। [illegible] का चमरौधा जूता मैंने बहुत दिनों तक पहना है। जब तक मेरे पिता जीवित रहे तब तक उन्होंने मेरे लिए बारह आने से ज्यादा का जूता कभी नहीं खरीदा और चार आने गज से ज्यादा का कपड़ा कभी नहीं खरीदा।

धनपतराय को पैसों की हमेशा दिक्कत रहती थी। "मुझे महीने में बारह आने फीस लगती थी। उन बारह आनों में से मैं एकाध आना हर महीने खा जाता था। जिस मुहल्ले में मैं था उसमें छोटी जाति के लोग थे। वे लोग मुझसे अक्सर दो चार पैसे मांग लेते थे। इसलिए फीस देने में मुझे बड़ी दिक्कत होती थी। घर में माँ तो थी नहीं। दादी ही से माँगना। वे बुरी तरह झल्लातीं। पिता से कहने की हिम्मत न थी, इसलिए माता की याद मुझे बार बार सताती थी।"

३

पहला विवाह

धनपतराय जब नवीं कक्षा में पहुँचे तो उनकी उम्र पन्द्रह साल की होगी। अजायबलाल ने सारे कुटुम्ब को लमही भेजा हुआ था। चलते वक्त पुत्र से उन्होंने पूछा था कि पढ़ाई के लिए कितने रुपये माहवार की आवश्यकता होगी। धनपतराय ने कहा था — पाँच रुपये दे दिया कीजियेगा। अजायबलाल ने सोचा सस्ते छूटे। यह रकम उन दिनों भी कम थी। दो रुपये फीस के, एक रुपया दूध का, दो रुपये किताब कपड़े आदि। नतीजा यह था कि हाथ तंग रहता।

धनपतराय बनारस के क्वीन्स कालेज में दाखिल हुए। सवेरे गुड़ और चबेना लेकर गाँव से बनारस जाते, दिन भर शहर में पढ़ते और शाम को घर लौटकर कुप्पी के सामने टाट पर बैठकर पढ़ते।

नवीं कक्षा के वार्षिक इम्तिहान से कुछ दिन पहले अजायबलाल के ससुर ने धनपतराय की शादी का प्रबन्ध किया। पिता ने गुड़ खरीदने के लिए पाँच रुपये भेजे। पाँच रुपये का एक मन गुड़ आया। चाची ने गुड़ को एक मटके में रखा और उसके मुँह को एक सकोरा रखकर मिट्टी से बन्द कर दिया। चाची के पिता बीमार थे इसलिए चाची तीन महीने के लिए मायके गईं। धनपतराय की वार्षिक परीक्षा नजदीक थी इसलिए वह नहीं जा सकते थे। मायके जाते समय चाची ने थोड़ा-सा गुड़ एक हाँडी में अलग से रख दिया और धनपतराय से कहा कि मटका मत खोलना। परन्तु चाची के जाते ही धनपतराय, चचेरे भाई तथा मित्रों ने गुड़ को मजे से खाना शुरू किया। रोज काफी-सा गुड़ उड़ जाता। जब अजायबलाल घर आये और चाची से गुड़ माँगा तब पता लगा कि बहुत-सा तो खत्म हो गया है। गुड़ कैसे खाया गया इसका वर्णन प्रेमचन्द ने अपनी कहानी 'होली की छुट्टी' में बड़े रोचक ढंग से किया है। वह लिखते हैं—

'सवेरे दूध के साथ गुड़, दोपहर को रोटियों के साथ गुड़, शाम को खाना

के साथ गुड़, रात को दूध के साथ फिर गुड़। यह तो वाजिब ही खर्च था। मगर मदरसे से बार बार पानी पीने घर आना और दो-एक टुकड़ियाँ निकाल कर खा लेना इसकी गुंजायश न थी। परन्तु गुड़ का ऐसा चस्का पड़ गया था कि हर वक्त नशा सवार रहता। घर में आने का मतलब था गुड़ की शामत आना।

एक हफ्ते में हाँडी खत्म हो गई। परन्तु मटका खोलने पर पाबन्दी थी। चाची के आने में अभी पौने तीन महीने बाक़ी थे। एक दिन तो किसी-न किसी तरह सब्र किया, लेकिन दूसरे दिन सब्र नहीं रखा जा सका। मटके पर निगाह पड़ते ही होश जाता रहा। मटका खोलकर एक हाँडी गुड़ निकालकर मटके को बन्द किया और प्रण किया कि इस हाँडी को तीन महीने चलाऊँगा। चाहे या न चले मैं चलाये जाऊँगा। मटके को मैं मंज़िल हफ़्तख्वाँ समझूँगा जिसे रुस्तम भी न खोल सका था। मैंने मटके में पिंडियों को कुछ इस तरह चुन लगाकर रखा जैसे बाज़ दुकानदार दियासलाई की डिबिया खोलकर रख देते हैं। एक हाँडी गुड़ खाली हो जाने पर भी मटका लबरेज़ था। अम्मा को पता ही न लगे। मुआवज़ा की नौबत कैसे आएगी। मगर दिल और ज़बान में जंग शुरू हुई कि क्या कहूँ और हर बार फ़तेह ज़बान ही के हाथ रहती। यह चार अंगुल ज़बान शहज़ोर पहलवान को नचा रही थी जैसे मदारी बन्दर को नचाए। उसको जो आसमान में उड़ता है और फ़लकुलअफ़लाक के मन्सूबे बाँधता है और अपने जोश में फिर उनको भी कुछ नहीं समझता। बार-बार इरादा करता कि दिन भर में पाँच पिंडलियों से ज़्यादा न खाऊँगा। लेकिन यह इरादा नागबियों की तवज्जो से ज़्यादा देरपा न होता था। घंटे-दो घंटे से ज़्यादा न टिकता। अपने आप पर हँसता, नफ़रीन करता, गुड़ को खा रहे हो मगर बरसात में सारा जिस्म सड़ आएगा। गन्धक का मरहम लगाए घूमोगे। कोई तुम्हारे साथ बैठना भी पसन्द न करेगा। कसम खाना—इल्म की माँ की ईश्वर की मगर उनका वही हश्र होता। दूसरा हफ़्ता ख़त्म होते होते हाँडी ख़त्म हो गई। उन दिनों मैंने बड़े ख़ुशू व ख़ुज़ू के साथ ईश्वर से प्रार्थना की। भगवान् यह मेरा चंचल मन मुझे परेशान कर रहा है। मुझे शक्ति दो कि इसको क़ाबू में रख सकूँ। मुझे दाहत-हास का लगाम दो जो इसके मुँह में डाल दूँ। यह कम्बख़्त मुझे अम्मा से पिटवाने और घुड़कियाँ सुनवाने पर तुला हुआ है। तुम ही मेरी रक्षा करो तो बच सकता हूँ। मेरी आँखों से इस जोश अक़ीदत में दो चार बूँदें आँसुओं की भी गिरीं लेकिन ईश्वर ने भी कुछ ममायन में की और गुड़ की चाहत मुझ पर ग़ालिब रही यहाँ तक कि दूसरी हाँडी की सरमियाकशानी की नौबत पहुँची। इत्तिफ़ाक़ से उन्हीं दिनों तीन दिन

की तलाश हुई और मैं निहाल गया। अम्मा ने पूछा — गुड़ का मटका देखा है ? चींटे तो नहीं लगे ? सील तो नहीं पहुँची ? मैंने मटके को देखने की भी कसम खाकर अपनी सआदतमन्दी का सबूत दिया। अम्मा ने मुझे गरूर की नज़रों से देखा और मेरी हुक्मबरदारी के सिले में मुझे एक हाँडी निकाल लेने की इजाज़त दे दी। हाँ ताकीद भी कर दी कि मुँह अच्छी तरह बन्द कर देना। अब तो वहाँ मुझे एक दिन एक एक जुग मालूम होने लगा। चौथे दिन घर आते ही मैंने पहला काम जो किया वह मटके को खोलकर हाँडी भर गुड़ निकालना था। एकबारगी पाँच डलियाँ उड़ा गया। फिर वही हुक्काबाज़ी शुरू हुई। अब क्या ग़म है ? अम्मा की इजाज़त मिल गई थी। सैयाँ भये कोतवाल— और हाँडी ग़ायब। आखिर मैंने अपने दिल की कमज़ोरी से मजबूर होकर मटके की कोठरी के दरवाज़े पर कुफ्ल डाला और उसकी कुंजी दीवार के एक मोटे शिगाफ़ में डाल दी। अब देखें तुम कैसे गुड़ खाते हो ! इस शिगाफ़ में से कुंजी निकालने के ये मानी थे कि तीन हाथ दीवार खोद डाली जाए। यह हिम्मत मुझमें न थी। मगर तीन दिन में ही सब्र का पैमाना छलक उठा और इन तीन दिनों में भी दिल की जो हालत थी वह बयान से बाहर है। निज़रा चोरी की तरफ़ बार बार गिरता और बे-सब्र निगाहों से देखता और हाथ मल मल कर रह जाता। कई बार कुफ्ल खटखटाया, खींचा, झटके दिए, मगर ज़ालिम ज़रा भी न हुमसा। कई बार इस शिगाफ़ का जायज़ा लिया। इसमें झाँककर देखा, एक लकड़ी से इसकी गहराई का अन्दाज़ा करने की कोशिश की, मगर इसकी तह न मिली। तबीयत खोई हुई-सी रहती। न खाने पीने में कुछ मज़ा था, न खेलने कूदने में। नफ़्स बार-बार मिन्तक़ के ज़ोर से दिल को क़ायल करने की कोशिश करता। आखिर गुड़ और किस मरज़ की दवा है ! मैं इसे फेंक तो देता नहीं, खाता ही तो हूँ। क्या आज खाया, क्या एक माह बाद ! इसमें क्या फ़र्क़ ? अम्माजान ने मुमानियत की है बेशक, लेकिन उन्हें मुझे एक जायज़ काम से बाज़ रखने का क्या हक़ है ! अगर वह आज कहें, खेलने मत जाओ या दरख़्तों पर मत चढ़ो या तालाब में तैरने मत जाओ या चिड़ियों के लिए कम्पा मत लगाओ, तितलियाँ मत पकड़ो, तो क्या मैं मान लेता हूँ ? आखिर मेरे भी कुछ हुक़ूक़ हैं या नहीं ? तो फिर इस मुआमले में क्यों अम्मा की मुमानियत पर अपनी आरज़ूओं और ख़्वाहिशों को क़ुर्बान कर दूँ ? आखिर चौथे दिन नफ़्स ने फ़तह पाई। मैंने अलस्सुबह एक कुदाल लेकर दीवार खोदना शुरू किया। शिगाफ़ था ही। खोदने में ज़्यादा दिक्क़त न हुई। आध घंटे की मेहनत शाक़्क़ा के बाद दीवार से कोई गज़ भर लम्बा और तीन इंच मोटा चप्पड़

छूटकर नीचे गिर पड़ा और लिफ़ाफ़े की तह में यह कसीदे कामयाबी पड़ी हुई थी जैसे समन्दर की तह में मोती की सीप पड़ी हो। मैंने झटपट इसे निकाला और फ़ौरन दरवाज़ा खोला। मटके से गुड़ निकालकर हाँडी में भरा और दरवाज़ा बन्द कर लिया। मटके में इस दस्ते कुदरत से काबिले अहसास कमी वाक़िया हो गई थी। हज़ार तरकीबें आज़माने पर भी इसका खला पुर न हो सका। मगर अब की बार मैंने इस चटोरपन का अम्मा जान की वापसी तक ख़ात्मा कर देने के लिए, कुंजी कुएँ में डाल दी। क़िस्सा तवील है। मैंने कैसे कुफ़्ल तोड़ा कैसे गुड़ निकाला और मटका ख़ाली हो जाने पर कैसे इसे तोड़ा और इसके टुकड़े रात को कुएँ में फेंके और अम्मा आईं तो मैंने कैसे रो रोकर उनसे मटके के चोरी जाने की दास्तान कही। यह बयान करने लगा तो यह वाक़िया जो मैं आज लिखने बैठा हूँ नातमाम रह जाएगा।

ख़ैर शादी की तैयारी हुई। धनपतराय बहुत ख़ुश थे। मंडप के लिए बाँस ख़ुद काटे। बरात रामापुर (रमवापुर) गई। ससुर ज़मींदार थे। रीति-रिवाज के अनुसार दूल्हे से हँसी-मज़ाक हुआ। धनपतराय ने ख़ुशी से सब रस्मों में हिस्सा लिया। विदाई हुई। ऊँटगाड़ी से समधी चले। कई रोज़ की यात्रा के बाद घर पहुँचे। गाड़ी से उतरते ही दुलहिन ने दूल्हे का हाथ पकड़कर चलना शुरू किया। यह गाँव की ज़िन्दगी में एक नई बात थी। सब चकित रह गए। धनपतराय झिझके। दुलहिन को देखा। उम्र में दूल्हे से बड़ी थी। एक कन्धा दूसरे से ऊँचा। रंग काला। जब मैंने उसकी सूरत देखी तो मेरा ख़ून सूख गया। पिता ने अहयाई की हरकत देख ही ली थी। जब उन्हें मालूम हुआ कि दुलहिन कितनी बदसूरत है तो अजायबलाल ने अपनी बीवी से कहा 'लालाजी ने मेरे लड़के को कुएँ में ढकेल दिया। अफ़सोस मेरा गुलाब-सा लड़का और उसकी यह स्त्री! मैं तो उसकी दूसरी शादी करूँगा।' चाची ने कहा 'क्या आएगा।'

कुछ ही दिन बाद अजायबलाल जमानियाँ वापस गये। कुछ दिन बाद उनकी बीवी भी वहाँ गई और जाते हुए धनपतराय की बीवी को भी साथ लेती गई। छः महीने बाद अजायबलाल का तबादला लखनऊ का हुआ। बीवी और बहू को लखनऊ छोड़ गए। धनपतराय वहाँ पहले से थे ही।

धनपतराय की बीवी ज़बान की भी मीठी न थी। यह इन्सान को और भी दूर कर देता है। पति की सौतेली माँ से उसकी कहाँ पटती। हर वक़्त अपनी क़िस्मत को रोती। ऊपर चाची एकान्त में बहू की शिकायत करती। चक्की के दो पाटों में पिसने वाली बात थी। दोनों ओर से धनपतराय की

माफ़ । सुबह पाँच मील शहर में आकर सारा दिन स्कूल में पढ़ना, शाम को खाक छानते हुए गाँव वापस आना और इस पर गाल की इस बक-बक का सामना।

अजायबलाल संग्रहणी के मरीज थे। बीमार पड़े और लमही आये। छह महीने बिस्तर पर पड़े रहने के बाद वह परलोक सिधार गए। घर में आमदनी एक पैसे की न थी और जो कुछ पूँजी थी, वह उनकी बीमारी पर खर्च हो गई थी। इस तरह चलते समय वह अपने पन्द्रह साल के बेटे, जिसके पाँव में जूते न थे और बदन पर फटे कपड़े थे, के कन्धे पर अपनी जवान बीवी और उसके दो बच्चों का भार भी छोड़ गए।

यों तो अजायबलाल बड़े विचारशील, जीवन-पथ पर आँखें खोलकर चलने वाले आदमी थे, परन्तु आखिरी दिनों में दूसरी शादी करके ठोकर खा गए। खुद तो गिरे ही, छोटी उम्र में लड़के की शादी करके उसे भी गिरा दिया।

खैर, क्वीन्स कालेज के हेडमास्टर ने फीस मुआफ़ कर दी। मगर मँहगाई का ज़माना था। दस सेर के जौ थे। कुनबे का पेट तो पालना था ही। इसका एक ही तरीका था। प्राइवेट ट्यूशन की जाए। बाँस-फाटक पर एक लड़के को पढ़ाना शुरू किया। घर से आठ बजे निकलते, स्कूल में पढ़ते और वहाँ से तीन बजे छुट्टी मिलते ही बाँस फाटक जाते। लड़के को पढ़ाकर छः बजे ट्यूशन खत्म कर लमही वापस लौटते। रात के आठ बजे घर पहुँचते। खाना खाकर कुप्पी के सामने बैठकर पढ़ते। दिन भर की थकावट होती। पता नहीं कब नींद आ जाती।

इस हालत में मैट्रिक की परीक्षा दी। पास तो हो गए, परन्तु दूसरे दर्जे में। क्वीन्स कालेज का कायदा था कि केवल पहले दर्जे के गरीब लड़कों की फीस मुआफ़ की जाती थी, इसलिए धनपतराय की फीस मुआफ़ी का प्रश्न ही न उठता था, न कालेज में दाखले का। और धनपतराय को अरमान था एम० ए० पास कर वकील बनने का। पाँव में लोहे की नहीं, अष्ट धातु की बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं और मैं चढ़ना चाहता था पहाड़ पर। इससे आगे प्रेमचन्दजी स्वयं लिखते हैं—

प्रयाग में उसी साल सेंट्रल हिन्दू कालेज खुल गया था। मैंने इस नये कालेज में पढ़ने का निश्चय किया। प्रिंसिपल थे मि० रिचर्डसन। उनके मकान पर गया। वह पूरे हिन्दुस्तानी वेष में थे। कुर्ता और धोती पहन फर्श पर बैठे कुछ लिख रहे थे। मगर मिज़ाज को तब्दील करना इतना आसान न था। मेरी प्रार्थना सुनकर—आधी ही कहने पाया था बोले कि घर पर मैं कालेज की बातचीत नहीं करता, कालेज में आओ। खैर, कालेज गया। मुलाकात तो हुई, पर निराशा

जनक। फीस मुआफ़ न हो सकती थी। अब क्या करूँ? अगर प्रतिष्ठित सिफारिशें ला सकता तो शायद मेरी प्रार्थना पर कुछ विचार होता लेकिन देहाती युवक को शहर में जानता ही कौन था?

रोज घर से चलता कि कहीं से सिफारिश लाऊँ पर बारह मील की मंज़िल मारकर शाम को घर लौट आता। किससे कहूँ? कोई अपना पुछत्तर न था।

कई दिनों बाद एक सिफारिश मिली। एक ठाकुर इन्द्रनारायणसिंह हिन्दू कालेज की प्रबन्धकारिणी सभा में थे। उनसे जाकर रोया। उन्हें मुझ पर दया आ गई। सिफारिशी चिट्ठी दे दी। उस समय मेरे आनन्द की सीमा न थी। खुश होता हुआ घर आया। दूसरे दिन प्रिंसिपल से मिलने का इरादा था। लेकिन घर पहुँचते ही मुझे ज्वर आ गया। और दो सप्ताह से पहले न मिटा। नीम का काढ़ा पीते-पीते नाक में दम आ गया। एक दिन द्वार पर बैठा था कि मेरे पुरोहितजी आ गए। मेरी दशा देखकर समाचार पूछा और तुरन्त खेत में जाकर एक जड़ खोद लाए और उसे धोकर सात दाने काली मिर्च के साथ पिसवाकर मुझे पिला दिया। उसने जादू का असर किया। ज्वर चढ़ने में घण्टे ही भर की देर थी। इस औषध ने मानो जाकर उसका गला ही दबा दिया। मैंने पण्डितजी से बार-बार उस जड़ी का नाम पूछा पर उन्होंने न बताया। कहा, नाम बता देने से उसका असर जाता रहेगा।

एक महीने बाद मैं फिर मि० रिचर्डसन से मिला और सिफारिशी चिट्ठी दिखाई। प्रिंसिपल ने मेरी तरफ तीव्र नेत्रों से देखकर पूछा, इतने दिन कहाँ थे?

बीमार हो गया था।

क्या बीमारी थी?

मैं इस प्रश्न के लिए तैयार न था। अगर ज्वर बताता हूँ तो शायद साहब मुझे झूठा समझें। ज्वर मेरी समझ में हलकी-सी चीज़ थी जिसके लिए इतनी लम्बी गैरहाज़िरी अनावश्यक थी। कोई ऐसी बीमारी बतानी चाहिए जो अपनी कष्ट-साध्यता के कारण दया को भी उभारे। उस वक्त मुझे और किसी बीमारी का नाम याद न आया। ठाकुर इन्द्रनारायणसिंह से जब मैं सिफारिश के लिए मिला था तो उन्होंने अपने दिल की धड़कन की बीमारी की चर्चा की थी। वह शब्द मुझे याद आ गया।

मैंने कहा, पैलपिटेशन ऑफ हार्ट, सर!

साहब ने विस्मित होकर मेरी ओर देखा और कहा, अब तुम बिलकुल अच्छे हो?

जी हाँ।

अच्छा प्रवेश-पत्र भरकर लाओ।

मैंने समझा बेड़ा पार हुआ। फ़ार्म लिया। खानापूरी की और पेश कर दिया। साहब उस समय कोई क्लास ले रहे थे। तीन बजे मुझे फ़ार्म वापस मिला। उस पर लिखा था— इसकी योग्यता की जाँच की जाए।

यह नई समस्या उपस्थित हुई। मेरा दिल बैठ गया। अंग्रेज़ी के सिवा और किसी विषय में पास होने की मुझे आशा न थी और बीजगणित और रेखा गणित से तो मेरी रूह काँपती थी। जो कुछ याद था वह भी भूल भाल गया था लेकिन दूसरा उपाय ही क्या था? भाग्य का भरोसा करके क्लास में गया और अपना फ़ार्म दिखाया। प्रोफ़ेसर साहब बंगाली थे। अंग्रेज़ी पढ़ा रहे थे। वाशिंगटन इर्विंग का 'रिप वान विंकल' था। मैं पीछे की कतार में जाकर बैठ गया और दो-ही-चार मिनट में मुझे ज्ञात हो गया कि प्रोफ़ेसर साहब अपने विषय के ज्ञाता हैं। घंटा समाप्त होने पर उन्होंने आज के पाठ पर मुझसे कई प्रश्न किए और मेरे फ़ार्म पर सन्तोषजनक लिख दिया।

दूसरा घंटा बीजगणित का था। इसके प्रोफ़ेसर भी बंगाली थे। मैंने अपना फ़ार्म दिखाया। नई संस्थाओं में प्रायः वही छात्र आते हैं जिन्हें कहीं जगह नहीं मिलती। यहाँ भी यही हाल था। क्लासों में अयोग्य छात्र भरे हुए थे। पहले रेले में जो आया वह भरती हो गया। भूख में साग-पात सभी रुचिकर होता गया। अब पेट भर गया था। छात्र चुन-चुनकर लिये जाते थे। इन प्रोफ़ेसर साहब ने गणित में मेरी परीक्षा ली और मैं फ़ेल हो गया। फ़ार्म पर गणित के खाने में असन्तोषजनक लिख दिया।

खैर मैं निराश होकर घर तो लौट आया लेकिन पढ़ने की लालसा अभी तक बनी हुई थी। घर बैठकर क्या करता? किसी तरह गणित को सुधारें और कालेज में भरती हो जाऊँ यही धुन थी। इसके लिए शहर में रहना ज़रूरी था। संयोग से एक वकील साहब के लड़कों को पढ़ाने का काम मिल गया। पाँच रुपये वेतन ठहरा। मैंने दो रुपये में अपनी गुज़र करके तीन रुपये घर के खर्च के लिए देने का निश्चय किया। वकील साहब के अस्तबल के ऊपर एक छोटी-सी कच्ची कोठरी थी। उसमें रहने की आज्ञा ले ली। एक टाट का टुकड़ा बिछा दिया। बाज़ार से एक छोटा-सा लैम्प लाया और शहर में रहने लगा। घर से कुछ बरतन भी उठा लाया। एक वक्त खिचड़ी पका लेता और बरतन धो माँजकर लाइब्रेरी चला जाता। गणित तो बहाना था उपन्यास आदि पढ़ा करता। पंडित रतननाथ सरशार का 'फ़िसाना-ए-आज़ाद' उन्हीं दिनों पढ़ा। 'चन्द्रकान्ता सन्तति' भी पढ़ी। बंकिम बाबू के उर्दू अनुवाद जितने पुस्तकालय

म मिल   सब पढ़ डाल । जिन वकील साहब क लडको को पढ़ाता था   उनके सान मेरे साथ मद्रिक्युलशन म पढते थ । उन्हीं की सिफारिश स मुझे यह पद मिला था । उनम दोस्ती थी इसलिए जब जरूरत होती, पस उधार ल लिया करता था । वेतन मिलन पर हिसाब हो जाता था । कभी दो रुपय हाथ आत कभी तीन । जिस दिन वेतन के दो-तीन रुपये मिलते   मेरा सयम हाथ स निकल जाता । प्यासी तृष्णा हलवाई की दुकान की ओर खीच ल जाती । दो तीन आन की मिठाई खाकर ही उठना । उसी दिन घर जाता और दो-ढाई रुपय दे आता । दूसर दिन स फिर उधार लेना शुरू कर देता लेकिन कभी कभी उधार माँगने में भी सकोच होता और दिन-का दिन निराहार व्रत रखना पड जाता ।

इस तरह चार-पाँच महीने बीत । इस बीच एक बजाज स दो-ढाई रुपये के कपडे लिये थ । रोज उधर स निकलता था । उसे मुझ पर विश्वास हो गया था । जब महीन-दो-महीने निकल गए और मैं रुपय न चुका सका तो मैंने उधर स निकलना ही छोड दिया । चक्कर देकर निकल जाना । तीन साल के बाद वमक रुपय अदा कर सका । उसी जमाने म शहर का एक बेलदार मुझस कुछ हिन्दी पढ़न आया करता था । वकील साहब क पिछवाडे उसका मकान था । जान लो भया   उसका सगुन तकिया था । हम लोग उसे जान लो भया ही कहा करत थ । एक बार मैंन उसस भी आठ आने पस उधार लिए थ । वह पस उसन मुझस मेरे गाँव म घर आकर पाँच साल बाद वसूल किए । मरी अब भी पढ़ने की इच्छा थी लकिन दिन दिन निराश होता जाता था । जी चाहता था कहीं नौकरी कर लू । पर नौकरी कम मिलती है और कहाँ मिलती है यह न जानता था ।

जाडों क दिन थे । पास एक कौडी न थी । दो दिन एक-एक पस का चबना खाकर काटे थे । मेरे महाजन ने उधार दने स इनकार कर दिया था या सकोचवश मैं उसस माँग न सका था । चिराग जल चुक थे । मैं एक बुकसलर की दुकान पर एक किताब बेचन गया । चक्रवर्ती गणित की कुजी थी । दो साल हुए खरीदी थी । अब तक उस बड जतन से रख हुए था पर आज चारों ओर स निराश होकर मैंन उस बेचन का निश्चय किया । किताब दो रुपय की थी लेकिन एक पर सौदा ठीक हुआ । मैं रुपया लकर दुकान स उतरा ही था कि एक बडी-बडी मूँछों वाल सौम्य पुरुष ने जो उस दुकान पर बठे हुए थ मुझसे पूछा   तुम कहाँ पढ़त हो ?

मैंने कहा   पढ़ता तो कहीं नहीं हू पर आशा करता हूँ कि कहीं नाम

लिखा लूँगा।

मट्रिक्युलेशन पास हो ?

जी हाँ।

नौकरी करने की इच्छा तो नहीं है

नौकरी कहीं मिलती ही नहीं।

यह सज्जन एक छोटे-से स्कूल म हेडमास्टर थ। उन्हें एक सहकारी अध्यापक की ज़रूरत थी। अठारह रुपये वेतन था। मैंने स्वीकार कर लिया। अठारह रुपय उस समय मेरी निराशा-व्यथित कल्पना की ऊँची-से ऊँची उड़ान स भी ऊपर थे। मैं दूसरे दिन हेडमास्टर साहब स मिलने का वादा करके चला तो पाँव ज़मीन पर न पड़ते थे। यह सन् १८९९ की बात है।

४

अध्यापन-कार्य का आरम्भ

चुनार ऐतिहासिक स्थान है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यू०पी० की मात्र एक रिफार्मेटरी यहीं की थी। इस क्षेत्र में ईसाई बनाने का काम भी खूब जोरों पर था। पादरियों ने स्कूल भी चला रखा था।

धनपतराय चुनारगढ़ के इसी मिशन स्कूल में नौकर हुए थे। साथ विजयबहादुर भी थे। खाने-पीने का इन्तजाम विजयबहादुर ही करते। वेतन अठारह रुपये था। पाँच रुपये ट्यूशन से मिल जाते। कमाई का अधिक भाग घर भेजा जाता। बाकी जो बचता वह तुरन्त ही खर्च हो जाता। पैसा अगर एक रुपये का आता तो चार-छः रोज ही में खत्म हो जाता। बोर्डिंग हाउस का बनिया उधार देता। रोटियाँ भी उधार पर चलती थीं। इसलिए वेतन मिलने से पहले ही खर्च हो जाता था। हालाँकि चुनारगढ़ बनारस से बहुत दूर नहीं है परन्तु पैसे का अभाव होने के कारण धनपतराय बहुत बार घर न जा पाते। पैसों के अभाव का दृष्टान्त उन्होंने स्वयं दिया है—"एक बार की बात है मैं घर आया। चार पाँच दिन घर रहा। जिस रोज मुझे वापस जाना था चाची से रुपये माँगे। चाची बोलीं—रुपये खर्च हो गए। गाँव में किससे उधार लेता? गाड़ी से बहुत पहले मैं और विजयबहादुर चल दिए। एक साल पहले मैंने बड़ी मुश्किलों से एक गरम कोट बनवाया था। मगर जाड़ों में भी कभी पहन कर उसे बड़े जतन से रखा था। अब इसे शहर में दो रुपये में बेचा। तब मैं और विजयबहादुर चुनारगढ़ पहुँचे।"

छुट्टी मुश्किल से मिलती थी। प्रेमचन्द के आरम्भिक अध्यापन-जीवन की [illegible] की छुट्टी कहानी में मिलती है। लिखते हैं, "मुझे एक प्राइमरी मदरसे में जगह मिल गई थी जो मेरे घर से ग्यारह मील पर था। हमारे हेडमास्टर साहब को छुट्टियों में लड़कों को पढ़ाने का शौक था। रात को लड़के खाना खाकर मदरसे में आ जाते और हेडमास्टर साहब चारपाई पर लेटकर

अपने खर्राटों से उन्हें पनाया करते। जब लड़कों में धौल धप्पा शुरू हो जाता और शोरगुल मचने लगता तब एकदम कच्ची नींद में चौंक पड़ते और लड़कों को दो चार तमाचे लगाकर फिर स्वप्न का मजा लेने लगते। ग्यारह बारह बजे रात तक यही ड्रामा होता रहता, यहाँ तक कि लड़के नींद से बेकरार होकर वहीं टाट पर सो जाते।

अप्रैल में सालाना इम्तिहान होने वाला था, इसलिए जनवरी ही से हाय तोबा मची हुई थी। सहकारी अध्यापकों को इतनी रियायत थी कि रात की क्लासों में उन्हें न बुलाया जाता था। मगर छुट्टी बिलकुल न मिलती थी। सोमवती अमावस आई और निकल गई। बसन्त आया और चला गया। शिवरात्रि आई और चली गई। और इतवारों का तो जिक्र ही क्या है! एक दिन के लिए कौन इतना बड़ा सफर करता? इसलिए कई महीनों से मुझे घर जाने का मौका न मिला था। मगर अब के मैंने पक्का इरादा कर लिया था कि होली पर जरूर घर जाऊँगा, चाहे नौकरी से हाथ ही क्यों न धोना पड़े। मैंने एक हफ्ता पहले ही से हेडमास्टर साहब को अल्टिमेटम दे दिया कि २० मार्च को होली की छुट्टी शुरू होगी और बन्दा १६ की शाम को रुखसत हो जाएगा। हेडमास्टर साहब ने मुझे समझाया कि अभी लड़के हो। तुम्हें क्या मालूम नौकरी कितनी मुश्किल से मिलती है और कितनी मुश्किलों से निभती है। नौकरी पाना इतना मुश्किल नहीं जितना इसका निभाना। ८ अप्रैल को इम्तिहान होने वाला है। तीन चार दिन मदरसा बन्द रहा तो बताओ कितने लड़के पास होंगे? साल भर की मेहनत पर पानी फिर जाएगा कि नहीं। मेरा कहना मानो। इस छुट्टी में न जाओ। इम्तिहान के बाद ईस्टर की चार दिन की छुट्टी होगी। मैं एक दिन के लिए भी न रोकूँगा। मैं अपने मोरचे पर डटा रहा। उपदेश, डर और जवाबतलबी—किसी का मुझ पर असर न हुआ। १६ को ज्यों ही मदरसा बन्द हुआ मैंने हेडमास्टर को सलाम भी न किया और चुपके से अपने निवासस्थान पर चला आया। उन्हें सलाम करने जाता तो वह एक-न-एक काम निकालकर मुझे रोक लेते। रजिस्टर में फीस का जोड़ निकालते जाओ। औसत हाजिरी लगाते जाओ। लड़कों की अभ्यास की कापियाँ इकट्ठी करके उनमें सुधार कर दो और तारीख आदि डाल दो। जैसे यह मेरा आखिरी सफर है और मुझे जिन्दगी के सारे काम अभी खत्म कर देने चाहिए। मकान पर आकर मैंने झटपट अपनी किताबों का बुकचा उठाया। अपना हल्का-सा लिहाफ कंधे पर रखा और स्टेशन पर चल पड़ा। गाड़ी पाँच बजकर पाँच मिनट पर आती थी। मदरसे की घड़ी हाजिरी में वक्त हमेशा

आधा घंटा तेज और रवानगी के वक्त आधा घंटा सुस्त रहती थी। चार बजे मदरसा बन्द हुआ था। मेरे खयाल में स्टेशन पर पहुँचने में काफी वक्त था। फिर भी मुसाफिरों को गाड़ी की तरफ से प्रायः जो डर लगा रहता है और जो घड़ी हाथ में होने पर और गाड़ी का वक्त सही मालूम होने पर भी दूर से किसी गाड़ी की गड़गड़ाहट या सीटी सुनकर कदमों को तेज और दिल को ढीला डाला कर दिया करता है वह मुझे भी लगा हुआ था। किताबों का बुकचा भारी था। इस पर कन्धे पर लिहाफ़। बार बार हाथ बदलता था और लपका चला जाता था। स्टेशन दो फर्लांग से नज़र आया। सिगनल डाउन था। मेरी हिम्मत भी इस सिगनल की तरह कमज़ोर हो गई। दिल ज़रूर नज़र से एक सौ कदम आगे दौड़ा मगर यह निराशा की हिम्मत थी। मेरे देखते-देखते गाड़ी आई। एक मिनट ठहरी और रवाना हो गई। मदरसे की घड़ी प्रतिदिन से भी ज्यादा सुस्त थी।

धनपतराय ने मिशन स्कूल में नौकरी कर तो ली थी—और कहीं मिलती ही नहीं थी—परन्तु वहाँ बहुत प्रसन्न न थे। इसका एक कारण तो यह था कि आर्य समाज के अनुयायी प्रेमचन्द ईसाई पादरियों द्वारा प्रचार[1] को देखकर दुखी होते थे। उनका विचार था कि ईसाई पादरियों का प्रचार हिन्दू समाज के लिए घातक होगा।

बहुत दिन नहीं गुज़रने पाए थे कि धनपतराय ने गवर्नमेंट डिस्ट्रिक्ट स्कूल बहराइच में नौकरी का प्रबन्ध कर लिया और २ जुलाई १९०० को उस स्कूल में पाँचवें अध्यापक भर्ती हुए। दो-ढाई महीने बाद ही धनपतराय का तबादला प्रतापगढ़ को हुआ। गवर्नमेंट स्कूल प्रतापगढ़ में उनका काम सन्तोषजनक ही रहा होगा क्योंकि जुलाई १९०२ में उन्हें अध्यापकों की ट्रेनिंग के एक कोर्स के लिए इलाहाबाद भेजा गया। सारे प्रान्त में केवल यही एक ऐसी संस्था थी जो अध्यापकों को ट्रेनिंग देती थी। यहीं से धनपतराय ने जूनियर सर्टिफिकेट टीचर्स की सनद ली। प्रिंसिपल तथा छात्राध्यापक उनसे खुश थे। सनद (डिप्लोमा) पर लिखा था कि गणित पढ़ाने की योग्यता नहीं रखते। चालचलन सन्तोषजनक है और समय के पाबन्द हैं। धनपतराय ने अपना काम खूब मेहनत से और अच्छी तरह किया।

धनपतराय के काम से उनके प्रिंसिपल श्री जे॰ सी॰ कम्पटर विशेषतया

[1] प्रेमचन्द की एक कहानी 'सुने गरार' में इसे इसका भयंकर चित्र लिखी है। इन्होंने आत्म-ने स्मरण में भी लिखा है।

प्रसन्न थे। ट्रेनिंग खत्म करने अब धनपतराय प्रतापगढ़ पहुँचे तब जल्दी ही प्रिंसिपल साहब ने उन्हें मॉडल स्कूल का हेडमास्टर नियुक्त करने के लिए इलाहाबाद बुला लिया। इस पद पर नियुक्ति से उन्हें दस रुपये माहवार का विशेष एलाउंस भी मिलना शुरू हुआ। यहीं से तीन महीने बाद धनपतराय का तबादला कानपुर गवर्नमेंट स्कूल का हुआ। कानपुर के जीवन का जिक्र करने से पहले हम धनपतराय के कालेज के जीवन के बारे में कुछ कहना आवश्यक जान पड़ता है।

धनपतराय के एक सहपाठी लाल कृष्ण ने उनके बारे में एक संस्मरणात्मक लेख लिखा है। इस लेख से धनपतराय के इलाहाबाद के जीवन पर काफी प्रकाश पड़ता है। वह लिखते हैं— उस जमाने में मैं ट्रेनिंग कालेज के सीनियर क्लास में पढ़ता था। हम सब लोग अर्थात् अध्यापक मॉडल स्कूल कालेज होस्टल में रहते थे। इसको आध्यात्मिक आकर्षण समझना चाहिए कि मेरा मुंशी (धनपतराय) साहब से खासतौर पर परिचय हुआ और बहुत जल्द दोस्ताना तआल्लुकात हो गए। (धनपतराय) बहुत शरतमन्द व जहीन थे। आरम्भ ही से किताबें पढ़ने का शौक था। एक रोज मेरे साथ मिस्टर सच्चिदानन्द सिंहा ऑनररी सेक्रेटरी कायस्थ पाठशाला से जिन्हें मैं पहले से जानता था भेंट की ताकि कभी कभी उनके पुस्तकालय से लाभ उठाते रहें। एक बार कहीं से मौलवी जकाउल्ला साहब देहलवी का लिखा भारतीय इतिहास ले आए और थोड़े ही दिनों में इसकी तीन या चार मोटी मोटी जिल्दों को खत्म कर डाला और इस ध्यान से पढ़ा जैसे इस पर कोई समालोचना लिखनी हो। बाबू धनपतराय छोटे कद के दुबले-पतले आदमी थे मगर थे मजबूत। पंजा तानने पर उंगलियों को मोड़ना साधारण आदमी के लिए आसान न था। उनका पहनावा सादा था। अचकन-पायजामा या खुले गले का लम्बा कोट पहनते थे। सम्भव है कि कभी पतलून भी पहनते हों परन्तु याद नहीं पड़ता। उस जमाने में विलायती फ़ैशन का भूत लोगों के सिर पर इतना ज्यादा सवार न था। सिर पर हिन्दुस्तानी टोपी या पगड़ी हुआ करती थी। जिस तरह *उनका रहन सहन सीधा सादा था उसी तरह उनकी आदतें और चरित्र भी सीधा* सच्चा और बनावटीपन से खाली था। आवाज ऊँची थी। ख्वामख्वाह किसी से दबने वाले न थे। होस्टल में लड़ने झगड़ने का तो जिक्र ही क्या आपको कभी किसी से सख्त या सज्जनता के परे बातचीत करते हुए भी नहीं देखा गया। नौकरों के साथ भी अच्छी तरह बर्ताव करते थे। इससे स्पष्ट है कि वह कितने हँसमुख समझौता करने वाले तथा हमदर्द परन्तु स्वाभिमानी पुरुष थे।

पढ़ने नियत समय अपना कमरा बन्द कर लिया करते थे और अवकाश के समय दिल खोलकर सफरीह करते। आपको और (मृत) बाबू गिरजाकिशोर साहब असिस्टेण्ट कमिश्नर सिंचाई के द्वारा हमारा एक छोटा-सा लाफिंग क्लब बन गया था। इसकी रोजाना मीटिंग मेरे ही कमरे में हुआ करती थी। इसमें एक-दो और साहब भी थे। बहरहाल इनमें सभी हंसने वाले थे। मगर धनपतराय गजब करते थे। जब हंसते तो खूब हंसते और कहकहा-पर-कहकहा लगाते चले जाते। इसी वजह से हम लोग खासकर मैं और गिरिजाकिशोर उनको बम्बूक कहा करते थे। सम्भव है यह नाम मेरा ही दिया हुआ हो। प्रायः इसी नाम से खतो-किताबत हुआ करती थी।

यहाँ एक और बात का उल्लेख करना आवश्यक है। धनपतराय ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से इसी साल उर्दू तथा हिन्दी में स्पेशल वर्नाक्युलर इम्तिहान भी पास किया। इसका अर्थ यह हुआ कि १९०४ तक उन्होंने अच्छी हिन्दी भी लिखनी शुरू कर दी थी। जिन लोगों ने यह कहा है कि प्रेमचन्द उर्दू के थे और उर्दू से हिन्दी में आए, उनका वक्तव्य सौ प्रतिशत ठीक नहीं है। धनपतराय को शुरू से हिन्दी से प्रेम था। इसका एक कारण तो शायद यह था कि वह आर्य समाज से बड़े प्रभावित थे। उस युग में आर्य समाज ने देश में एक नई चेतना ला दी थी। स्वराज्य की ओर लोगों को प्रेरणा देने में तो इस संस्था का बड़ा हाथ था ही। इस संस्था ने रूढ़िवाद से टक्कर ली, स्त्रियों को पर्दे से मुक्त किया, उनकी शिक्षा का प्रचार किया और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का रास्ता दिखलाया। धनपतराय (प्रेमचन्द) की प्रारम्भिक किताबों में भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के सम्बन्ध में जगह जगह हवाले मिलते हैं।

परन्तु हिन्दी से प्रेम होते हुए भी प्रेमचन्द को हिन्दी में लिखने का विशेष अवसर नहीं मिला था। सरकारी भाषा उन दिनों उर्दू थी। कायस्थ परिवारों में जहाँ उनके कई मित्र भी थे, उर्दू ही का प्रचार था। उत्तर प्रदेश के जिन कस्बों या देहातों में जहाँ वे पढ़ाते थे वहाँ भी उर्दू ही चलती थी। उस क्षेत्र में जो मासिक पत्रिकायें लोकप्रिय थीं वे भी उर्दू में ही थीं।

५

साहित्यिक क्षेत्र मे प्रवेश

धनपतराय ने कब और कहाँ लिखना आरम्भ किया इसके बारे मे निश्चित रूप से कुछ कहना बहुत कठिन है। इस सम्बन्ध म यह भी बतलाना आवश्यक है कि स्वय प्रेमचन्द ने भिन्न भिन्न स्थानो पर भिन्न तिथियाँ दी हैं। इसके अलावा उनके प्रकाशन के बारे म भी उनके कथनो मे बड़ी गलतियाँ हैं।

एक पत्र[1] म प्रेमचन्द ने लिखा था लिटरेरी ज़िन्दगी १९०१ म शुरू की। रिसाला ज़माना म लिखता रहा। कई साल तक मुतफर्रिक मज़ामीन लिखे। १९ ४ म एक हिन्दी नावेल प्रेमा लिखकर इण्डियन प्रेस म छापा कराया। एक दूसरे पत्र म लिखा हमखुर्मा ओ-हम-सवाब जिसका हिन्दी अनुवाद प्रेमा[2] के नाम से छपा था किस्सा गालिबन १९० की तसानीफ है। फरवरी १९ २ के हंस म प्रेमचन्द न लिखा— उपन्यास तो मन १९ १ ही म लिखना शुरू किया। मेरा एक उपन्यास १९०२ म निकला और दूसरा १९ ४ म।

ऊपर लिखी पक्तियो स ऐसा लगता है कि प्रेमचन्द ने निबन्ध लिखन का काम १९   या १९०१ में आरम्भ किया और उसी समय उपन्यास भी लिखन आरम्भ किए। यह ठीक नही है।

ज़माना का पहला परचा शिवव्रतलाल वमन ने केसरी प्रेस बरेली से १९ ३ म निकाला। वमन साहब एक खानगी हादिसा स इस कदर मुतअस्सिर हुए कि तीन महीने के लिए ज़माना की इदारत दयानारायण निगम क सुपुर्द कर गम गलत करने के लिए सर और सफर म मशगूल हो गए और फिर अपनी खिदमत पर वापस न हुए। इसके कुछ बाद ही दयानारायण निगम ने परचे को कानपुर स निकालना शुरू किया क्योकि ज़माना १९ ३ क आखिरी महीन म निकला, इसलिए प्रेमचन्द की सबस पहली रचनाओ का

---

१ दयानारायण निगम को लिखा गया एक पत्र जिसे प्रेमचन्द ने १७-७-२६ को लिखा।
२ इम्तियाज़ अली ताज को लिखा जनवरी १९२१ का पत्र।

इसमें प्रकाशित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। उस समय के दूसरे परचे अब उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए उनके मुतफर्रिक मज़ामीन का पता नहीं चलता। आन्शिवान के केवल एक लेख तथा एक नावल का पता लग सका है। ये बनारस के साप्ताहिक आवाज़ ख़ल्क में छपे थे। लेख का विषय था ओलिवर क्रामवेल। धनपतराय का पहला नावल अक्टूबर १९०३ से लेकर फरवरी १९०५ तक बराबर किस्तों में छपता रहा। इसका शीर्षक था असरारे माबिद (पुजारी) का रहस्य और लेखक का नाम था धनपतराय उर्फ नवाबराय इलाहाबादी। इलाहाबादी शब्द का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। ये रचनाएं शायद सेन्ट्रल ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद से ही प्रकाशनार्थ भेजी गई होंगी।

असरारे माबिद के बारे में कुछ कहने से पहले हम यह बतलाना आवश्यक समझते हैं कि रतननाथ सरशार की मृत्यु १९०२ में हुई थी। सम्भव है प्रेमचन्द का यह विचार भी आया हो कि सरशार के बाद उनकी जगह खाली है और वह स्वयं उसकी पूर्ति कर सकते हैं। यह असरारे माबिद जो प्रेमचन्द का पहला प्रकाशित उपन्यास है सरशार के नावलों के तरीके पर ही लिखा गया है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें काशी के पण्डों पर व्यंग्य है। उपन्यास के आरम्भ में ही एक कन्या बीबीजान पण्डा यशोदानन्द के कमरे में गज़लें गाती है। एक मित्र त्रिलोकी भी बैठे हैं। वह भी बीबीजान पर मोहित हैं। परन्तु बीबीजान यशोदानन्द की ओर आकर्षित है। उनसे कुछ इनाम की आशा करती है। ण्डा यशोदानन्द भी बीबीजान से प्यार का प्रदर्शन करते हैं। वह बीबीजान र पूछते हैं— क्या बोसा लेने की इजाज़त है? बीबीजान तमाचा रसीद रती है और यशोदानन्द के घर से भाग निकलती है।

पण्डा यशोदानन्द इस क्षेत्र में महारथी हैं। इसका प्रमाण है अपनी रामकली से सम्बन्ध। रामकली बनारस में अपने पिता के घर पर रहती है। पति के यहाँ नहीं जाती। यशोदानन्द से उसकी आशनाई है। वह उनके पास ठाकुर (मन्दिर के एक भाग में) शयन करती है। शराब पीकर घर पहुँचती है और जब वह देखती है कि उसका पति उसे लिवा ले जाने के लिए आया है तो वह बीमारी के बहाने से अपने तन को ढकती है। बेचारा पति उसके बिस्तर के पास बैठा रहता है। शराब की बदबू से उसे कै आ जाती है। परन्तु मन आदमी को कुछ समझ में नहीं आता। अगले दिन रामकली जो पति के र नहीं जाना चाहती ढोंग रचाती है कि उसके गहने का बक्सा चोरी हो या है। घर में शोर है और इसी बहाने से वह पति के घर नहीं जाती। र का बक्स यशोदानन्द के पास पहुँचता है जो अपनी कठिनाइयों का मीठा

मित्र रामकली को बताने हैं।

बीबीजान घर पहुँचती है तो देखती है कि उसके गुमाश्ता भूग है। वह बतलाता है कि त्रिलोकीनाथ ने काम बिगाड़ दिया वरना वह कुछ-न-कुछ लेकर आती। परन्तु वहाँ तो अफ़ीमची भूसे भाँडा तथा गमाश्ता की भूल तेज होती जा रही है। बीबीजान के गले का नकली हार लेकर (रतननाथ सरशार के खोजी की तरह) मचकन इत्यादि डालकर बाज़ार में बेचने जाते हैं। त्रिलोकीनाथ की मदद से वे नकली हार को एक अमीरज़ादे को असली हार के भाव बेचते हैं। ग्राहक इस तलाश में हैं कि किसी पुराने घराने की माला मिले। त्रिलोकीनाथ चुपके से अपनी सहायता के बदले में मुनाफ़े का आधा हिस्सा माँगता है।

उपन्यास सरशार के उपन्यासों की तरह ढीला-ढाला है। और वार्तालाप पर आधारित है। करैक्टर भी सरशार के खोजी और राबी के साँचे में ढले हैं। अश्लीलता के दर्शन भी हैं। रामकली के चंचल करैक्टर की झलक हम धनपतराय के अगले उपन्यास में मिलती है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में दो महत्त्वपूर्ण उर्दू मासिक पत्र निकले थे—'मख़ज़न' और 'ज़माना'। 'मख़ज़न' के सम्पादक थे शेख़ अब्दुल क़ादिर और 'ज़माना' के मुंशी दयानारायण निगम। 'मख़ज़न' का दावा था कि इसने पंजाबी ममनमालों को उर्दू लिखना का ढंग सिखलाया। यह तो साफ़ है कि इसमें लिखते प्रायः मुसलमान ही थे और उनमें भी अधिकतर पंजाबी मुसलमान। परन्तु 'ज़माना' का क्षेत्र विस्तृत था। इसमें भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों के लेखक लिखते थे—हिन्दू और मुसलमान दोनों ही। 'ज़माना' के सम्पादक ने पत्र का स्तर क्रमशः ऊँचा किया और कुछ मुसलमान लेखक जो पन्द्रह-बीस साल से लिखना छोड़ बैठे थे वे भी इसमें लिखने लगे। 'ज़माना' का महत्त्व एक और दृष्टि से भी था। यह भी साहित्यिक आलोचना और सामयिक घटनाओं पर टिप्पणी। साहित्यिक आलोचना की तो इसने नींव ही डाली। प्रेमचन्द का भी इस काम में बड़ा हाथ था।

'ज़माना' में धनपतराय की जो पहली रचना छपी वह हकीम बरहम के नावल कृष्ण कँवर की आलोचना थी। यह फ़रवरी १९०५ के 'ज़माना' में छपी (उस समय धनपतराय इलाहाबाद से ट्रेनिंग लेकर प्रतापगढ़ लौट चुके थे)। इसी लेख के सम्बन्ध में लिखे गए एक पत्र में निगम को लिखा "मैं बड़े इन्तियाक़ से मुन्तज़िर हूँ कि आपने मेरा नावल अभी तक पढ़ा या नहीं। जवाब से सरफ़राज़ फ़रमाइए।" यह पत्र ३ जनवरी १९०५ का लिखा हुआ है।

जिस उपन्यास की भार सकत है वह "नाम" हम खुर्मा भा हम सवाव [1] हो। इसका उपलब्ध प्रथम सस्करण पर काइ तारीख नहीं है। प्रस का नाम भी नहीं छपा है। पुस्तक का पहला विज्ञापन दिसम्बर १९०६ क जमाना म मिलता है। इसम लिखा है— नाजरीन जमाना म जिन हजरात न नावल कृष्ण कवर पर मिस्टर नवावराय की पुरजोर तनकीद गौर से पढी है व जानत हैं कि मिस्टर मौसूफ उसूले नावलनिगारी से किस हद तक वाकिफ है। इस हालत म उनक कलम स निकला हुआ नावल किन खूबियों का मजमुआ होगा इसकी तशरीह की चन्दा जरूरत नही। बहरकफ़ यह नावल हम खुर्मा भो हम सवाव' मिस्टर मौसूफ की ताजा और प्रछूती तसनीफ है जो हाल ही म शाया हुई है। क़िस्स की दिलचस्पी के साथ मुसन्निफ की जादूनिगारियाँ बहुत बडी तारीफ की मुस्तहिक हैं। इस पाया के नावल उर्दू म बहुत कम शाया हुए है। हम चाहत हैं कि आम शायकीन एक-एक जिल्द मगाकर लुत्फ उठाए और मुसन्निफ की दिमागसोजी तवाई और वसीह मालूमात की दाद दें। फी जिल्द बारह आन क़ीमत पर मनजर जमाना कानपुर से फौरन तलब करन पर मिल सकता है।

'हम खुर्मा भा हम सवाब' उर्दू म छपन क कुछ ही समय बाद हिन्दी म भी छपा। इसका प्रथम संस्करण इण्डियन प्रस इलाहाबाद से १९०७ म छपा। मूल्य दस आन था। इस संस्करण पर पुस्तक का नाम इस प्रकार है

प्रमा

अर्थात्

दो सखियों का विवाह

लखक का नाम है बाबू नवाबराय बनारसी

इस पुस्तक म एक विज्ञप्ति भी छपी है जिसम लिखा है—

विदित हो कि यह प्रमा उपन्यास इण्डियन प्रस प्रयाग का भार म छपाकर प्रकाशित किया गया है। इसलिए इस कोई छापन का साहस न कर क्योंकि मैंन इसका सर्वाधिकार (कापीराइट) इण्डियन प्रस का सौंप दिया है—नवाब राय ग्रन्थकर्ता।

प्रमा वास्तव म हमखुर्मा भा हमसवाब का हिन्दी अनुवाद है। दोनों म

---

[1] ११ १ २१ का एक पत्र में धनपतराय ने इम्तियाज अली ताज को लिखा था कि यह नावल नवल किशोर प्रेस लखनऊ में छपा था। निगम साहब ने लिखा है कि इस बाबू महादेव प्रसाद सेठ ने छापा था। उस पुस्तक का दूसरा संस्करण नवल किशोर प्रस में छपा। अब वह इस पर भी नहीं है।

चित्र रामकली को अतान है।

बाबीजान घर पहुँचती है तो देखती है कि उसने गुमाश्ता भूखे हैं। यह बतलाता है कि त्रिलोकीनाथ ने काम बिगाड़ दिया वरना वह कुछ-न-कुछ लेकर आती। परन्तु यहाँ तो अफ़ीमची भूखे भाँडा तथा गुमाश्ता की भूख तज़ हामी जा रही है। बीबीजान के गले का नक़ली हार नेकर (रतननाथ सरशार के खोजी की तरह) अथवन इत्यादि डालकर बाज़ार में बचने जाते हैं। त्रिलोकीनाथ की मदद से वे नक़ली हार को एक अमीरज़ादे को असली हार के भाव बेचते है। ग्राहक इस तलाश में है कि किसी पुराने घराने की माला मिले। त्रिलोकीनाथ चुपके से अपनी सहायता के बदले में मुनाफ़े का आधा हिस्सा माँगता है।

उपन्यास सरशार के उपन्यासों की तरह ढीला-ढाला है। ज़ोर वार्तालाप पर आधारित है। करेक्टर भी सरशार के खोजी और रावी के साँचे में ढले हैं। अश्लीलता के संकेत भी हैं। रामकली के चपल करेक्टर की झलक हमें धनपतराय के अगले उपन्यास में मिलती है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में दो महत्त्वपूर्ण उर्दू मासिक पत्र निकले थे—मख़ज़न' और ज़माना। मख़ज़न के सम्पादक थे शेख़ अब्दुल क़ादिर और ज़माना' के मुंशी दयानारायण निगम। मख़ज़न का दावा था कि इसने पंजाबी मुसलमानों को उर्दू लिखने का ढँग सिखलाया। यह तो साफ़ है कि इसमें लिखते प्रायः मुसलमान ही थे और उनमें भी अधिकतर पंजाबी मुसलमान। परन्तु ज़माना का क्षेत्र विस्तृत था। इसमें भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों के लेखक लिखते थे—हिन्दू और मुसलमान दोनों ही। ज़माना के सम्पादक ने पत्र का स्तर क्रमशः ऊँचा किया और कुछ मुसलमान लेखक जो पन्द्रह-बीस साल से लिखना छोड़ बैठे थे वे भी इसमें लिखने लगे। ज़माना का महत्त्व एक और दृष्टि से भी था। यह थी साहित्यिक आलोचना और सामयिक घटनाओं पर टिप्पणी। साहित्यिक आलोचना की तो इसने नींव ही डाली। प्रेमचन्द का भी इस काम में बड़ा हाथ था।

ज़माना में धनपतराय की जो पहली रचना छपी वह हकीम बरहम के नावल कृष्ण कँवर की आलोचना थी। यह फ़रवरी १९०५ के ज़माना में छपी (उस समय धनपतराय इलाहाबाद से ट्रेनिंग लेकर प्रतापगढ़ लौट चुके थे)। इसी लेख के सम्बन्ध में लिखे गए एक पत्र में निगम को लिखा "मैं बड़े इन्तियाक से मुन्तज़िर हूँ कि आपने मेरा नावल अभी तक पढ़ा या नहीं। जवाब में सरफ़राज़ फ़रमाइए।" यह पत्र ३० जनवरी १९०५ का लिखा हुआ है।

जिस उपन्यास की ओर सकेत है वह "हम खुर्मा वा हम सवाब"[1] हो। इसके उपलब्ध प्रथम सस्करण पर कोई तारीख नहीं है। प्रेस का नाम भी नहीं छपा है। पुस्तक का पहला विज्ञापन दिसम्बर १६०६ के जमाना मे मिलता है। इसमे लिखा है— नाजरीन जमाना मे जिन हजरात ने नावल कृष्णा कुँवर पर मिस्टर नवाबराय की पुरजोर तनकीद गौर से पढ़ी है वे जानते हैं कि मिस्टर मौसूफ उसूले नावलनिगारी से किस हद तक वाकिफ है। इस हालत मे उनके कलम से निकला हुआ नावल किन खूबियो का मजमुआ होगा इसकी तशरीह की चन्दा जरूरत नहीं। बहरकैफ यह नावल 'हम खुर्मा ओ हम सवाब' मिस्टर मौसूफ की ताजा और मशहूनी तसनीफ है जो हाल ही मे शाया हुई है। किस्से की दिलचस्पी के साथ मुसन्निफ की जादूनिगारियाँ बहुत बडी तारीफ़ की मुस्तहिक है। इस पाया के नावल उर्दू मे बहुत कम शाया हुए है। हम चाहते है कि आम नाजरीन एक-एक जिल्द मगाकर लुत्फ उठाएँ और मुसन्निफ की दिमागसोजी तवाई और वसीह मालूमात की दाद दें। फी जिल्द बारह आने कीमत पर मनेजर जमाना कानपुर से फौरन तलब करने पर मिल सकता है।

हम खुर्मा वा हम सवाब उर्दू मे छपने के कुछ ही समय बाद हिन्दी मे भी छपा। इसका प्रथम सस्करण इण्डियन प्रेस इलाहाबाद से १६०७ मे छपा। मूल्य दस आने था। इस संस्करण पर पुस्तक का नाम इस प्रकार है

प्रेमा

अर्थात्

दो सखियो का विवाह

लेखक का नाम है बाबू नवाबराय बनारसी

इस पुस्तक मे एक विज्ञप्ति भी छपी है जिसमे लिखा है—विदित हो कि यह प्रेमा उपन्यास इण्डियन प्रेस प्रयाग की ओर से छपाकर प्रकाशित किया गया है। इसलिए इसे कोई छापने का साहस न करे क्योकि मैंने इसका सर्वाधिकार (कापीराइट) इण्डियन प्रेस को सौंप दिया है—नवाब राय ग्रथकर्ता।

प्रेमा वास्तव मे हमखुर्मा वा हमसवाब का हिन्दी अनुवाद है। दोनो मे

---

[1] ११.१.२१ को एक पत्र मे धनपतराय ने इम्तियाज अली ताज को लिखा था कि यह नावल नवल प्रेस लखनऊ से छपा था। निगम साहब ने लिखा है कि इस पर कोई मतन्य... प्रकाशक का नाम ने छापा था। उस पत्र का दूसरा ... नवल किशोर प्रेस मे छपा। ... इस पर भी नहीं है।

अन्तर नही से बराबर है। हाँ प्रेमा का अन्त एक तुलसीदास के दोहे से होता है जहि क जहि पर सत्य सनेहू सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू।

जब हम खुर्मा औ हम सवाब तथा इसका अनुवाद प्रेमा प्रकाशित हुए तब धनपतराय कानपुर म मास्टर थे। उनके दयानारायण निगम को लिखे पत्रा तथा प्रेमा के इण्डियन प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित होने से ऐसा लगता है कि दोनो पुस्तको के लेखन तथा प्रकाशन का प्रबन्ध शायद तभी हुआ हो जब धनपतराय इलाहाबाद म पढते थे या हेडमास्टर (फर्स्ट टीचर) थे अर्थात् यह काय १४ ५ १९०५ तक हो चुका था जब धनपतराय की नियुक्ति कानपुर के डिस्ट्रिक्ट स्कूल म हुई।

धनपतराय (प्रेमचन्द) के उन दिनो क जीवन की झलक कानपुर से प्रकाशित होने वाले एक पत्र में मिलती है। यह शायद अप्रैल-मई १९०६ की गरमी की छुट्टियो का जिक्र है जब धनपतराय अपने घर लमही म गये। उन्होंने निगम को लिखा था गरमी की कुछ कैफियत न पूछिये। गरीबखाना को तो माहबे मकान हू और खुदा के फजल से मकान भी सारे गाँव का महसूद है। मगर रहने काबिल एक कमरा भी नही। कोठे पर आग बरसती है। बैठा और पसीना चोटी से एड़ी को चला। नीचे का कमरा सब गन्दा (परेशान)। किसी म बैल बंधता है किसी म उपले जमा हैं कहीं अनाज का ढेर है किसी मे जाँत चक्की ओखली मूसली वगरा जुलूस फर्मा हैं। कोई बैठ कहाँ ! सोये कहाँ ! मजबूरन अनाज के घर म एक चारपाई की जगह निकाल ली है। उस पर दिन रात पड़ा रहता हूँ। अकेले घूमने कहाँ जाऊ ? इस गरमी म कैसा पढना कैसा लिखना ! सुबह के वक्त घंटा आधा घंटा तरक गर्दानी कर लेता हूँ। बाकी रात दिन मैं हूँ और चारपाई। मुलक्कड बड़ा है मगर नींद भी कुछ मेरे घर की लौंडी नही। उस पर तरह द अलग। कहाँ हँसी-मजाक म दिन कटता था कहाँ चुपकी मिठाई या गूँगे का गुड खाकर बैठना पडता है। अजब बीन म जान मुश्किल है। भाई जल्दी म छुट्टी कटे और फिर यारो के जलसे और चहचह कहकहे हो। कोई बीस दिन से ज्यादा गुजरे मगर कसम ले लो जो जबान से प्यारा नफ्ज अबूब एक बार भी निकला हो।

इस पत्र की साहित्यिक छटा अंकित करने योग्य है।

जमाना से धनपतराय का सम्बन्ध दिन ब दिन घनिष्ठ होता जा रहा था। १ अगस्त १९ ५ म मलिका विक्टोरिया पर एक लेख छपा अक्तूबर १९०५ म राजा मानसिंह पर और नवम्बर दिसम्बर १९ ५ म आनरबल गोपालकृष्ण गोखले पर। शुरू म उन्हे निबन्ध लिखने का विशेष शौक न था परन्तु

दयानारायण निगम से मित्रता होने के कारण उन्हें कसमखिलाई भी करनी पड़ी। 'ज़माना' की जड़ कुछ मज़बूत हो चुकी थी। निगम तथा 'ज़माना' के दूसरे लेखकों से मित्रता हुई और एक प्रकार से एक 'ज़माना क्लब' बन गया। नौबतराय 'नज़र', प्यारेलाल 'शाकिर मेरठी' इत्यादि इस ग्रुप में थे। कभी कभी मामा विजयबहादुर भी साथ होते। प्रतिदिन शाम को बैठक होती और दुनिया भर की बातों पर बातचीत होती। हँसी के कहकहे सुनाई देते। एक बार पड़ोस में किसी की छत पर बड़े शौक़ से 'लाफ़िंग सांग' का रिकार्ड बज रहा था। कुछ देर तो धनपतराय चुपके बैठे रहे फिर कहने लगे 'लीजिए मैं भी इसके कहकहे में इसका साथ देता हूँ।' और उसके साथ-साथ हँसने लगे।

उन्हीं दिनों धनपतराय ने एक लेख लिखा था, जिसका शीर्षक है 'देसी अशिया का क्योंकर फ़रोग़ हो सकता है?' निगम लिखते हैं, 'बाज़ अहम तहरीरें भी 'ज़माना' के लिए लिखीं जो कभी उनके नाम से और कभी बिला नाम शाया हुईं।' इनके अलावा 'नवाबराय' सामयिक विषयों पर भी बहुत कुछ लिखते थे। उनका छाँटना मुश्किल है। १९०५ तथा १९०६ के अंकों में छपी सामयिक घटनाओं (रफ़्तारे ज़माना) के विषय इस प्रकार हैं— 'नया साल', 'क़ौमी जलसे', 'ब्रिटेन में नई सरकार', 'स्वदेशी', 'वेस्ट मिन्स्टर में कांफ्रेंस', 'तक़सीमे बंगाल के रोकने की उम्मीदें ख़त्म', 'रूस की हालत दिगरगूँ', 'फ़ारस में सल्फ़ गवर्नमेंट की माँग', 'हिन्दुस्तान में हड़ताल', 'मिस्र में इंगलिस्तान के ख़िलाफ़ जद्दोजहद', 'हिन्दुस्तान पर पार्लियामेण्ट में बहस', 'तक़सीमे बंगाल के ख़िलाफ़ कलकत्ता में जलसा' इत्यादि। सामयिक विषयों पर विशेषतया अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर लिखने का नवाबराय को बहुत शौक़ था।

'ज़माना' तथा उसके सम्पादक दयानारायण निगम से उनका कितनी घनिष्ठ मित्रता का सम्बन्ध होगा, इसका सबूत हमें उनके १९०६ के लिखे एक पत्र में मिलता है। इसमें लिखा— 'रुपये आपने रवाना किये। पहुँचे। ख़त से रूह को मसर्रत हासिल हुई। तीन बार से कम न पढ़ा होगा। किताबें और अख़बार पहुँचे। उर्दू-ए-मुअल्ला हस्ब मामूल मुख़्तसर है। 'ज़माना' की छपाई अब की दो-एक मज़मून की न थी। लखनऊ और कानपुर की किताबत में साफ़ फ़र्क़ नज़र आता है। छपाई की सफ़ाई लिखाई के ऐब को नहीं मिटा सकी। मगर वक़्त से पर्चा निकल तो ये सब बागुज़ारतें क़ाबिल मुआफ़ी हैं। अगर देर ही में निकलता है तो अपनी नबियों में क्यों बट्टा लगायें? जून का पर्चा निकलते ही इस ज़िले में चार-पाँच अख़बार की कापी के रवाना कीजिए। उसके पहुँचते ही इश्तहार रवाना हो। फ़हरिस्त आपके पास पहुँची होगी। शायद

इतमीनान के क़ाबिल भी हो। जी तो चाहता था कि पचास ख़रीदारों के नाम एकबारगी लिखता मगर फ़िलहाल सोलह ही पर क़नाअत की। उनके नाम परचे भेज दीजिए। मसलन गाज़ीपुर, आज़मगढ़, बलिया, गोरखपुर और बनारस का वस्ता। बनारस ही में पन्द्रह-बीस ख़रीदार हो जाएँगे। ज़रा तबीयत ठिकाने हो जाए तो काम शुरू करूँ।

इसी पत्र में आगे लिखते हैं— मझधार में छोड़ने वाले और होंगे। यहाँ तो जब एक बार बाँह पकड़ी तो ज़िन्दगी पार लगा दी। नौबतराय न आयें क्या जहाँ मुर्ग़ा न होगा वहाँ सुबह न होगी? एडीटोरियल मैं सब कर लूँगा। ख़तो किताबत जो मुआमला की है वह मैं कर लूँगा। ख़ास एडीटर की तवज्जोह के क़ाबिल जो ख़तूत होंगे वह ख़िदमते शरीफ़ में पेश होंगे। और काम करने का बन्दोबस्त होना ज़रूरी है। लेबल छपा लेंगे। आने का वक़्त आएगा तो मशवरा हो रहेगा। जान गाढ़े में न डालो। हिम्मते मर्दां मददे ख़ुदा। हिम्मते एडीटरान मददे दोस्तान। हाँ यह ऐलान करना ज़रूरी होगा कि नवाबराय स्टाफ़ में दाख़िल हो गए बस।

ज़माना के जून १९०६ के अंक में एक विज्ञप्ति मिलती है जिसके अनुसार ज़माना के एडिटोरियल स्टाफ़ में अलावा क़ाबिल दीगर हज़रात के ज़माना के मशहूर मज़मून निगार नवाबराय भी मुस्तक़िल तौर पर शामिल हो गए हैं।

उर्दू पत्रकारिता में प्रेमचन्द की शीघ्र ही इतनी धाक बैठ गई कि इण्डियन प्रेस इलाहाबाद के मालिक श्री चिंतामणि घोष (जो 'सरस्वती' भी निकालते थे) ने एक उर्दू मासिक पत्रिका आरम्भ करने के लिए नवाबराय को ही चुना। नवाबराय से बातचीत हुई। वह तैयार थे। वेतन का फ़ैसला हुआ। पत्रिका का नाम 'फ़िरदौस' तय पाया। परन्तु जब नवाबराय ने अपने मित्रों से सलाह की तो सबने राय दी कि सरकारी स्कूल मास्टरी से इस्तीफ़ा देना मुनासिब नहीं। एक साल की छुट्टी लेकर देखो। यदि पर्चा चल निकले तो ठीक वरना वापस आकर अपने ढर्रे पर डटो। नवाबराय को बात जँची।

मगर पहले अंक के लिए प्रेमचन्द ने तैयारी शुरू की। लेखों के लिए पत्र लिखे। निश्चित कार्यक्रम के अनुसार मासिक के प्रथम अंक का प्रकाशन १५ जनवरी १९०८ को तय पाया था। नीचे हम प्रेमचन्द के उस पत्र का उद्धरण देते हैं जो १७ नवम्बर १९०७ को दुर्गासहाय सरूर जहानाबादी पीलीभीत को लिखा। हस्ताक्षर धनपतराय मास्टर गवर्नमेंट स्कूल कानपुर के नीचे नवाबराय लिखकर काट दिया गया है। पत्र के आरम्भ में लिखा है— मुझे तो

आप शायद भूल गए। अब याद दिहानी करता हूँ। उसके बाद लिखा है 'माह जनवरी १९०८ से इलाहाबाद के इण्डियन प्रेस ने एक आला दर्जे का उर्दू रसाला शाया करने की नीयत की है और उसकी एडीटरी की खिदमत मैंने आप साहबों की इआनत के भरोसे पर अपने ऊपर ली है। पहला नम्बर १५ जनवरी को निकल जाएगा। रसाला बातस्वीर होगा। तसावीर और उमदा लिखाई छपाई और कागज की मखसूसियत से लिहाज रखा जाएगा। आप जानते हैं इण्डियन प्रेस कैसा मालदार है। वह जिस कदर चाहे सरफ कर सकता है। मैं चाहता हूँ कि पहले नम्बर में नज़्में खास तौर पर ज़ोरदार हों और ऐसी नज़्मों के लिए आपके सिवा और किससे इल्तजा करूँ? मुआविज़ा जो कुछ मुनासिब होगा या जो कुछ आप फरमाएँगे अकीदत से हाज़िर खिदमत होगा। और रसाला के मुकाबले में आप इसे ज़्यादा पाएँगे। यह इलतमास करने की ज़रूरत नहीं कि पहली नज़्म आप ही की होगी। हाँ यह रसाला पॉलिटिकल होगा।'

कुछ कारणों से यह स्कीम आगे न चल सकी। दो वर्ष बाद इण्डियन प्रेस ने 'अदीब' निकाला तो प्यारेलाल 'शाकिर' मेरठी इसके सम्पादक बने (यह भी 'ज़माना' के सम्पादकीय विभाग में काम कर चुके थे)।

'शाकिर' ने हमको बतलाया है कि धनपतराय (नवाबराय) को किताबें पढ़ने का बड़ा शौक था। शायद ही कोई विषय हो जिस पर एक आध किताब उनकी नज़रों से न गुज़री हो। इसके साथ ही हाफिज़ा भी बला का था। साहित्यिक और राजनीतिक किताबों तथा रसाइल को पढ़कर उन विषयों पर ऐसे बोलते थे जैसे उन्हें दोहरा रहे हों। किस्सा-कहानी पढ़कर याद रखते ही थे।

इसी समय के बारे में लिखते हुए एक लेखक ने लिखा है कि चार्ल्स डिकेन्स तथा सर वाल्टर स्काट के लगभग सारे ही नावेल प्रेमचन्द ने पढ़े थे। जब एक के बाद दूसरे उपन्यास के कथानक के बारे में वह बोलते तो सब प्रभावित होते। सरयूनारायण तिवारी जो उस समय पृथ्वीनारायण हाई स्कूल कानपुर में अध्यापक थे, उन्होंने एक बार नवाबराय से साफ कहा 'आप स्वयं उपन्यास लिखकर भारतीय साहित्य का स्तर क्यों ऊँचा नहीं उठाते'

नवाबराय का अगला उपन्यास 'किशना' था। अगस्त १९०७ के ज़माना में इसका विज्ञापन मिलता है। १४२ सफ़े की यह पुस्तक इंडियन मॉडर्न रिफॉर्म सीरीज़ का पहला नम्बर थी। इस उपन्यास की एक भी प्रति उपलब्ध नहीं है। इसमें स्त्रियों के गहनों के सिंगार पर व्यंग्य किया गया था। इसी समस्या पर आगे चलकर प्रेमचन्द का 'गबन' भी निकला।

ज़माना के अक्तूबर-नवम्बर १९०७ के अंक में 'किशना' की आलोचना

छपी है। हम उसे उद्धृत करते हैं— यह भी एक नावल है और हमारे सोशल रिफार्म से ताल्लुक रखता है। जमाना के मशहूर मजमून निगार मुंशी नवाबराय साहब बनारसी इसके मुसन्निफ हैं जो फन नावल नवीसी पर उमदा अबूर रखते हैं। उन्होंने औरत में जेवर के फजूल शौक की अच्छी चखाड़ की है।

गोया यह एक ऐसी औरत की लाइफ है जिसे जेवरात का शौक नहीं बल्कि जुनून था। इस जुनून की तस्वीर दिखाने में लायक मुसन्निफ ने बहुत-कुछ जोरे कलम सर्फ किया है। ताहम अफरात व तफरीत की वजह से यह जब्त असली नहीं बल्कि मसनूई मालूम होता है। साथ ही शादी-ब्याह के बाज रसूम का भी खाका उड़ाया गया है। खुसूसन एक रस्म मुर्दना का करार दाद और उसका सख्ती से वसूल करना बेशक एक नामाकूल रस्म है। लेकिन खुश किस्मती से मुहज्जब बिरादरान कौम रोज-ब-रोज इसके खिलाफ होते जाते हैं। और मुहज्जब शहरों और तालीमयाफ्ता हलकों में इसका रिवाज उठता जाता है। उन्हीं के नमूने पर देहात के बाशिन्दे भी अपनी इस्लाह कर सकते हैं जो निहायत जरूरी है। अलबत्ता शादियों के मौके पर खुशी व मुसर्रत का इजहार लाजिमी है वरना शादी व गमी के तकरीबों में इम्तियाज महाल हो जाएगा और कौम से जिन्दादिली का मादा बिलकुल जायल हो जाएगा जो तहजीब का जुज़्वे आजम है। किताब में जो जबान इस्तेमाल की गई है वह मुंशी साहब की फसीह तहरीरों में बहुत कम मिलती है। गालिबन यह जबान इसलिए इस्तेमाल की गई है कि जिस फिरके की इस्लाह मकसूद है उसके लिए दिलचस्प हो।

हम मुसन्निफ की कालिज नजरी से जिस अमर का सख्त ताज्जुब है वह उसूल फन से ताल्लुक रखता है। यानी उन्होंने किशना को लाला धनकधारीलाल से पहले ही सीन में मिलाया है जो सोशल रिफार्मरों में निहायत मुअज्जिज व मुमताज हैं लेकिन उन्होंने अपनी बीवी के खिलाफ गरीब किशना के जुनून का कोई माकूल इलाज नहीं किया और इसलिए हीरो ने अपने रुतबे और शान को कायम रखने में नाकामी उठाई। फन की नजाकत यह चाहती थी कि लाला धनकधारीलाल की कोशिश से किशना का जुनून बंद हो जाता और वह अपने तबका के लिए एक महबूबा बनती। बहालत मौजूदा यह एक ऐसा नावल है जिसमें कोई हीरो या हीरोइन नहीं है और इसे एक नावल कहना भी महाल है। दरअसल यह नावल है भी नहीं बल्कि एक मजमूम मजाक निसवानी का खाका उड़ाया गया है, जिसे अंग्रेजी में कैरीकेचर कहते हैं। और

इस लिहाज से यह तसनीफ[1] जरूर कद्र की मुस्तहिक है।

जैसे असरारे मआबिद' और 'हमखुर्मा ओ हमसवाब' में हम रामकली का करेक्टर मिलता है वैसे ही 'हमखुर्मा ओ हमसवाब' और 'किशना' दोनों ही में प्रचारक धनरधारीलाल का करेक्टर मिलता है।

'किशना' लोकप्रिय हुआ या नहीं, इसके बारे में कुछ कहना कठिन है। परन्तु नवाबराय का पहला उपन्यास (हमखुर्मा ओ-हमसवाब) जरूर लोकप्रिय हुआ होगा। एक डेढ़ साल में पहला संस्करण खत्म हो गया। सितम्बर १९०७ के 'जमाना' में एक विज्ञप्ति में इसका मूल्य बारह आने से बढ़ाकर एक रुपया कर दिया गया। यह दूसरे संस्करण का ही मूल्य होगा।

---

१ १९४४ में छपी मेरी अंग्रेजी पुस्तक में मैंने लिखा था कि 'श्यामा' 'किशना' के आधार लिखी गई। इस सम्बन्ध में मदनगोपाल ने डॉ. कमर रईस को २१-४-५८ को एक लिखा— 'किशना' नाम का कोई छोटा नावल था और गालिबन पहले उर्दू में छपा था मगर इसकी कोई निजी मेरे पास नहीं है। मैं बरसों से इस कोशिश में हूँ लेकिन अब तक कोई कामयाबी नहीं मिली है। यह नावल बाद में किसी दूसरे नाम से शाया हुआ या नहीं यह भी मैं नहीं कह सकता। श्यामा का किशना से कुछ भी ताल्लुक है, यह मेरी समझ में नहीं आता।

—कमर रईस पृष्ठ १४५

६

नई प्रकार की कहानियाँ

जिन दिनों नवाबराय के उपन्यासों की चर्चा व्यापक रूप से चली उन्हीं दिनों नवाबराय ने एक नई दिशा में लिखना शुरू किया। यह था कहानियों का क्षेत्र जिन्हें उन दिनों हिन्दी में गल्प कहा जाता था। अपने मासिक कथारम्भ लेख में प्रेमचन्द ने लिखा है— डाक्टर रवीन्द्रनाथ टगोर की कई गल्पें मैंने अंग्रेजी में पढ़ी थीं और उनका अनुवाद उर्दू पत्रिकाओं में छपवाया था। (ये अनुवाद कहाँ छपवाये इसका पता नहीं चल सका) उसी लेख में आगे चलकर लिखा मेरी पहली कहानी का नाम था दुनिया का सबसे अनमोल रत्न। वह १९०७ में जमाना में छपी। उसके बाद मैंने चार-पाँच कहानियाँ और लिखीं।

हैरानी की बात है कि दुनिया का सबसे अनमोल रत्न शीर्षक कहानी जमाना की फाइलों में कहीं नजर नहीं आई। नवाबराय की जो पहली कहानी वहाँ मिलती है वह है 'इश्क दुनिया और हुब्बे वतन' (अप्रैल १९०८)। परन्तु जिन कहानियों की ओर इशारा है वे छपी अवश्य उसी समय। ये कहानियाँ इस प्रकार हैं — दुनिया का सबसे अनमोल रत्न शेख मखमूर यही मेरा वतन है सिलाए मातम तथा इश्के दुनिया और हुब्बे वतन।

जिस भाषा में ये कहानियाँ लिखी गई उस पर फारसी का गहरा प्रभाव है। लतल-धारा भी क्लिष्ट है। ये कहानियाँ हैं— दुनिया का सबसे अनमोल रत्न क्या है? काम का ज़माना आवेज्यान ताज गसरो जामेहम नस्ने ताऊस और जर परस्त'।

दुनिया का सबसे अनमोल रत्न कहानी इस प्रकार आरम्भ होती है—

दिलफिगार एक पुरखार दरख्त के नीचे दामनचाक बैठा हुआ खून के आँसू बहा रहा था। वह हुस्न का शैदी यानी मलिका दिलफरेब का सच्चा और जाँबाज आशिक था। उन आशिकों में नहीं जो इत्र फुलेल में बसकर और

लिबास फाखिरा से सजकर आशिक के भेष में माशूकियत का दम भरते हैं बल्कि उन सीधे-सादे, भोले भाले फिदाइयों में जो कोहे बियाबान में सर टकराते और नाला फरयाद मचाते फिरते हैं। दिलफरेब ने इससे कहा था कि अगर तू मेरा सच्चा आशिक है तो जा और दुनिया की सबसे बेशबहा शै लेकर मेरे दरबार में आ। तब मैं तुझे अपनी गुलामी में कबूल करूँगा।

आगे लिखा है—'अब दिलफिगार एक ऊँचे पहाड़ की चोटी पर खड़ा होता है। एक सब्जपोश सर पर अमामा बाँधे एक हाथ में तस्बीह और दूसरे हाथ में असा लिये बरआमद हुए और हिम्मत अफजा लहजे में बोले, ऐ दिल फिगार नादान दिलफिगार! यह क्या बुजदिलाना हरकत है? इस्तकमाल राह इश्क की पहली मंजिल है। मर्द बन और यूँ हिम्मत न हार। मशरिक की तरफ एक मुल्क है जिसका नाम हिन्दुस्तान है। वहाँ जा तेरी आरजू पूरी होगी।

कहानी का अन्त इस प्रकार है— एकाएक पर्दा चर निगार हट गया और दिलफिगार के रूबरू एक दरबार हुस्न आरास्ता नजर आया जिसकी एक नाजनीन दुल्हन जमला थी। दिलफरेब बसदशाने रानाई मसनद जरीं-कार पर जलवा अफरोज थी। दिलफिगार यह तिलिस्मे हुस्न देखकर मुतहैयर हो गया और नक्श दीवार की तरह सकते में आ गया कि दिलफरेब मसनद से उठी और कई कदम आगे बढ़कर उससे हमआगोश हो गई। रक्कासान दिलनवाज ने शादियाने गाने शुरू किए। हाशिया नशीना ने, दरबार ने दिलफिगार को नज़रें गुजरानी और माह व खुर्शीद को बाइज्जत तमाम मसनद पर बठाया।

ये कहानियाँ उर्दू साहित्य में एक नये दौर का प्रतीक थीं। सिला-ए-मातम को छोड़कर बाकी चारों कहानियों में देश प्रेम की झलक थी। साहित्य में यह एक नई धारा थी जो आगे चलकर बहुत प्रबल हुई और जिसने गुल भी खिलाये।

ये कहानियाँ देश प्रेम की भावना से ओत प्रोत थीं। राजपूत शूरमाओं का बलिदान तथा देश के पराधीन होने के कारण का चित्रपट भी इनमें था जैसे रूठी रानी में। इस सम्बन्ध में प्यारेलाल शाकिर ने लिखा है—

एक दिन दिल्ली जिला में मुंशी (प्रेमचन्द) के मकान की तरफ जा निकला। सोचा इधर आया हूँ तो उनसे मिलता चलूँ। ड्योढ़ी में दाखिल हुआ था उन्हें तख्त पर अजीब शान से देखा। पर्दे पर चन्द पोथे पड़े हैं। दोनों टाँगें दस्तों में ऊपर उठी हुई हैं। सामने एक हिन्दी का रिसाला खुली हुई है। कलम नाकों में चल रहा है और कलम की रफ्तार के साथ-साथ टाँगें भी बराबर हिल रही हैं। मुझे ख्याल आया कि इस वक्त किसी रिसाले पर

तनकीद लिखी जा रही है। अन्दर पहुंचते ही मैंने दरयाफ्त किया— कहिये किसकी तवाजा हो रही है? हंसकर जवाब दिया तवाजा तो किसी की नहीं हो रही। आज ज़रा रूठी रानी[1] को मना रहा हूं।

---

१ 'रूठी रानी', जो अप्रैल मई और अगस्त १९०७ में छपी थी, एक हिन्दी पुस्तक का अनुवाद था जिसे धनपतराय ने किया। (मूल पुस्तक शायद देवीप्रसाद की लिखी हुई थी।)

७

दूसरी शादी

साहित्यिक क्षेत्र म पत्रकार निबन्ध लेखक तथा उपन्यासकार क रूप म जो नवाबराय (धनपतराय) दिन-दूनी रात चौगुनी तरक्की कर रह थे उनका ववाहिक जीवन दुखी था। अजायबलाल न छोटी उम्र म धनपतराय की शादी कर अपन इस अल्पायु पुत्र क लिए बड़ी-बड़ी समस्याए खड़ी कर दी थी। उसक सिर पर बहुत भारी बोझ रखकर वह स्वय चल बस। पिता की मृत्यु क बाद अपनी पत्नी, विमाता विमाता क भाई विजय बहादुर तथा उनक दो पुत्रों का भार धनपतराय किसी तरह सहन रह। परिवार लमही म रहता था इसम धनपतराय अपनी आय का अधिक भाग घर भेज दते थ। छुट्टियो म घर आते और बहुत दुखी होत। बीवी तथा विमाता म खमचख मचा रहता। विमाता धौंस जमाती बीवी धौंस नही मानती। धनपतराय क घर आत ही दोना उनसे शिकायतें करता। धनपतराय की हालत चक्की क दो पाटो के बीच की थी। उनक शब्दों म ही सुनिए—

'एक बार चाची (विमाता) अपन मायक गई हुई थी। मरी बीवी थी मैं था। घर म मेरी चची चचेरी भाभी थी। मगर उन दिनो उनक पर म तकलीफ थी। कभी-कभी वे भूत प्रेत की तरह हाथ माव करती थी। एक पण्डित भाभाई का काम करत थे बद का भी काम करत थ। मरी चची ने कहा उन्हें बुला लाओ। मैं उन्हें बुला लाया। पण्डितजी आय और ओझा की तरह धुआ उड़ाने लगाय लगाय किया। मैं भी दोपहर तक बठा बठा उन्हा क साथ हवन करता रहा। पर म मालिश करने को तेल बनाया। मैंने उन्ही स तेल बनवाया। उनक पैरो का मालिश करन क लिए नाइन ठीक की। अब व अच्छी हुई तो सुमन बहन को बुलान का कहा। मैंन यह भी किया। इस पर जब चाचा घर पर आई तो रुपया का हिसाब उड़ान पूछा। मैंन बता दिया कि रुपए इस तरह खर्च हो गए। हिसाब द दिया। उस समय चाची की निगाह म मैंन दो

बड़ी बुराइयाँ कीं। मेरी बहन को भी इन्होंने काफी तकलीफ़ दी। झगड़ा आए दिन हुआ करता। झगड़ा इतना बढ़ा कि एक साल बाद बीवी को मजबूरन घर छोड़ना पड़ा।

जब धनपतराय गरमियों की छुट्टी पर घर आये तो वहाँ से निगम को लिखे गए उनके एक पत्र को पढ़कर उनकी परिस्थिति का अन्दाज हो सकता है। वे लिखते हैं—

जून का एक महीना काटा था कि दाँतकी तरह दांत का ताँता बंधा। औरतों ने एक-दूसरे को जली कटी सुनाई। हमारी मखदूमा ने जल भुनकर गले में फाँसी लगाई। माँ ने आधी रात को सौंपा निगोड़ी उसको रिहा किया सुबह हुई। मैंने खबर पाई। झल्लाया बिगड़ा जानता मुलायमत की। बीवी साहिबा ने मय ज़िद पकड़ी कि यहाँ न रहूँगी मैके जाऊँगी। मेरे पास रुपया न था। लाचार खत का मुनाफा कबूल किया। उनकी रुखसती की तैयारी की। वह रो-धोकर चली गई। मैंने पहुँचाना भी पसन्द न किया। आज उनको गये आठ रोज़ हुए। न खत है न खबर। मैं उनसे पहले ही खुश न था। अब तो सूरत से बेज़ार हूँ। ग़ालिबन अब की जुदाई दायमी साबित हो। खुदा करे ऐसा ही हो। मैं बिना बीवी के रहूँगा। बिल्ली बगैर मुर्गा लँडूरा ही रहेगा। उधर ननिहाल से वालिदा की तरफ से फिक्र है कि ब्याह रचे और जरूर रचे। जब कहता हूँ मैं मुफ़लिस हूँ कंगाल हूँ खाने को मुयस्सर नहीं तो वालिदा साहिबा कहती हैं तुम अपनी रज़ामन्दी ज़ाहिर करो तुमसे एक कौड़ी न माँगी जाएगी। सुनता हूँ बीवी हसीन है वाकार है जब से खर्च बगैर मिली जाती है फिर तबियत क्यों न गुदगुदाये और गुदगुदी क्या न पैदा हो? ईश्वर जानता है। दो तीन बार उसका ख्वाब भी देख चुका हूँ। बहरहाल अबकी तो गला छुड़ा ही लूँगा। आइन्दा की बात नारायण के हाथ है। जैसी आपकी सलाह होगी वैसा ही करूँगा। इस बारे में अभी फिर मशवरा करने की ज़रूरत बाकी है।

कई बरस बाद शिवरानीजी को बतलाया— छुट्टियों के दिन थे। मैं घर आया था। उन्हीं दिनों मुझमें और मेरी बीवी में झगड़ा हो गया था और इसके साथ साथ चाची ने काफी शिकायत भी उनकी की थी। क्रोध में आकर मैंने उनको डाँटा। वे भी मुझ पर झल्लाईं। मैंने कहा—इससे कहीं बेहतर होगा तुम अपने घर जाओ। मैंने विजय बहादुर से कहा इनको पहुँचा आओ। मेरा कहना था कि वे उन्हें पहुँचा आये।

रिश्ते में कई प्रस्ताव आये परन्तु धनपतराय इस बार वे किसी को

प्रोत्साहन न देते थे। वह स्वयं पत्नी को वापस ले आने के लिए तैयार न थे परन्तु उनका विचार था कि शायद उनकी बीवी लौट आये। कई साल तक इन्तज़ार करने के बाद उन्होंने तय किया कि दूसरी शादी तो की जाए परन्तु किसी बाल विधवा से। निगम ने लिखा है—

'उनका उस वक्त आलमे शबाब था। और वह एक हँसमुख जिन्दादिल गुदाज़ व तन्दुरुस्त और साफ़ कमाल नौजवान थे। श्रीवास्तव फ़िर्के में जिससे उनका तअल्लुक था क़रार दाद की रस्म आम है और हज़ार-दो हज़ार रुपये नक़द तो उनको आसानी से मिल सकता था। और यह रक़म उस वक्त उनके लिए एक बड़ी रक़म थी। उनके अहले ख़ानदान बेवा विवाह के ख़िलाफ़ थे। मगर वह अपने क़याम पर अटल रहे।'

सलीमपुर (ज़िला फ़तहपुर) के मुंशी देवीप्रसाद की लड़की, शिवरानी देवी ग्यारह साल की होकर विधवा हो गई थी। मुंशीजी दुखी थे और चाहते थे इस बेचारी का दूसरा विवाह हो। पण्डितों से पूछा। समाचारपत्रों में इश्तिहार निकलवाया। इसके जवाब में कई पत्र आए। इनमें से एक धनपतराय का था। इसमें अपनी शिक्षा तथा नौकरी के बारे में लिखा था (और शायद कहा कि पहली बीबी मर चुकी है)। देवीप्रसाद ने उन्हें फ़तहपुर बुलाया, पसन्द किया, बरच्छा दी और विवाह के पत्र दिये।

धनपतराय के घरवाले विधवा विवाह के विरुद्ध थे, इसलिए धनपतराय ने उन्हें ख़बर तक न दी। विधवा से विवाह करना इनकी दिलेरी थी। वह समाज के दकियानूसी बन्धन तोड़ना चाहते थे।

शादी के बाद शिवरानी देवी पति के घर आईं और चौदह दिन रहीं। घर का हिसाब किताब कुछ अजीब था। चाची की चलती थी। शिवरानी देवी परदा करती थीं। चाची का व्यवहार ऐसा ही होगा, जैसा प्रेमचन्द की पहली बीवी से था। इसलिए जहाँ तक सम्भव होता शिवरानी देवी मायके में रहना पसन्द करतीं।

कानपुर के जीवन के बारे में शिवरानी देवी लिखती हैं— आप सुबह चार बजे उठते थे। हुक्का पीकर शौच जाते, हाथ मुँह धोते और जो मिल जाता उसी का नाश्ता करते। मुन्नी के साथ बैठकर लिखते। कलम मज़दूरों के फावड़े की तरह तेज़ी से चलती थी। शाम को निगम तथा दूसरे मित्रों के साथ गप्पें होतीं। दस से घर लौटते।

कानपुर के डिस्ट्रिक्ट स्कूल से आपका सम्बन्ध क़रीब चार बरस रहा। कभी पाँचवें मास्टर कभी सातवें और कभी नौवें।

जब कानपुर ही म थ उमी समय धनपतराय (नवाबराय) की सोज़ेवतन' (कहानियों का संग्रह) छपी। इसका पहला विज्ञापन 'ज़माना' के अगस्त १६०८ अक में मिलता है। इस संग्रह में पाँच कहानियाँ हैं दुनिया का सबसे अनमोल रत्न शेख मख्मूर यही मेरा वतन है सिल-ए-मातम और दुनिया और हुब्बे वतन। जैसा हम पहले कह चुके हैं सिल ए-मातम को छोड़कर बाकी सभी कहानियाँ देश प्रेम म रंगी हैं। लेखक की प्रस्तावना से उनके दृष्टिकोण का पूरा पता चलता है। इसे हम उद्धृत करते हैं—

हर एक कौम का इलमो अदब अपने जमाने की सच्ची तसवीर होता है। जो खयालात कौम के दिमाग़ को मुतहर्रिक करते हैं और जो जज़बात कौम के सीना म गूँजते हैं वह नज़्म व नसर के सफ्हा म ऐसी सफाई स नज़र आते हैं जैसे आईने में सूरत। हमारे लिटरेचर का इब्तदाई दौर वह था कि लोग गफलत के नशे म मतवाले हो रहे थे। इस ज़माने की अदबी यादगार बजुज़ आशिकाना ग़ज़लों और चन्द बिफ्सा किस्सों के और कुछ नहीं। दूसरा दौर उसे समझना चाहिये जब कौम के नये और पुराने ख़यालात म ज़िन्दगी और मौत की लड़ाई शुरू हुई और इसलाह समद्दुन की तजवीज़ें सोची जाने लगी। इस ज़माने के किस्से व हिकायात बएतबार इसलाह और तमद्दुन ही का पहलू लिए हुए हैं। अब हिन्दुस्तान के कौमी ख़यालात ने बलोग़ियत के ज़ीने पर एक कदम और बढ़ाया है और हुब्बे वतन के जज़बात लोगों के दिलों म सर उभारने लगे हैं। क्योंकि मुमकिन था कि इसका असर अदब पर न पड़ता ये चन्द कहानियाँ इस असर का आग़ाज़ हैं और यकीन है कि ज्यों ज्यों हमारे ख्याल वसीह होते जाएँगे इस रंग के लिटरेचर को रोज़ अफज़ूँ फरोग होता जाएगा। हमारे मुल्क को ऐसी किताबों की अशद ज़रूरत है जो नई नसल के जिगर पर हुब्बे वतन की अज़मत का नक्शा जमायें—नवाबराय।

सोज़ वतन' के प्रकाशन का समय देश म राजनीतिक जागृति का काल था। कितने ही पत्रों न इस पुस्तक की प्रशंसा की। ज़माना म दी गई विज्ञप्ति म आम गज़ट स्वराज्य हिन्दोस्तान मिनर्वा तथा 'ज़माना म की गई आलोचनाएँ म प्रश स्ति पाए। आगे चलकर इस पुस्तक के कारण धनपतराय पर एक आफत भी आई इसलिए आवश्यक है कि हम ज़माना की समालोचना उद्धृत करें। यह नवम्बर १६ ८ के अक म छपी थी —

ज़माना के मक बूल मज़मून निगार मिस्टर नवाबराय न उर्दू फसाना निगारी का एक निहायत ही दिलकश नमूना पेश किया है जो सोज़ेवतन के नाम स मौसूम है। इस किताब म पाँच छोटे-छोटे किस्से जमा किए गए हैं जो निहायत

मौअस्सर और दिलचस्प हैं और जिनका मकसद आला हुब्बुलवतनी है। पहला किस्सा बिल्कुल ड्रामेटाइज़ के तर्ज़ पर लिखा गया है जिसमें एक आशिक़ सादिक़ अपनी महबूबा की फ़रमाइश के लिए निकलता है जो दुनिया का सबसे बेशक़ीमती चीज़ माँगती है और मुतवातिर नाकामियों के बाद गौहर मक़सूद हाथ लगता है। दूसरा क़िस्सा तर्ज़े बयान के ऐतबार से एक जुदागाना नमूना पेश करता है लेकिन मकसद यहाँ हुब्बुलवतनी है और निस्बतन ज़्यादा अच्छा है। लेकिन सबसे उम्दा तीसरा क़िस्सा है। चौथे क़िस्से का हुब्बुलवतनी से कोई ताल्लुक नहीं और इस लिहाज़ से इस सिलसिले से ज़्यादा ताल्लुक़ नहीं रखता। मगर दिलचस्पी के ऐतबार से यह क़िस्सा भी बड़े-बड़े फ़िसाना निगारों की और क़लम की याद दिलाता है। पाँचवें क़िस्से में दुनिया के मशहूर हुब्बे वतन जोज़फ़ मज़ीनी के हालात दर्ज किये गए हैं और दिखाया गया है कि उसकी हुब्बुलवतनी कैसी सच्ची और सरफ़रोशी की थी। इन क़िस्सों के लिखने में क़ाबिल फ़सानानिगार ने नाज़रीन की दिलचस्पी का बहुत बड़ा लिहाज़ रखा है और उन मुश्किलाती मसाइल को जो बज़ाहिर निहायत ख़ुश्क मालूम होते हैं ऐसा दिलचस्प लिबास पहनाया है जो उर्दू में बिल्कुल नया और क़ाबिल तहसीन है। अगरचे ये क़िस्से बहुत ही मुख़्तसिर हैं लेकिन ये इख़्तसार उसूल मख़सूस पर मबनी हैं। यानी इनमें अलफ़ाज़ कम हैं और मतालिब ज़्यादा। अगर लफ़्फ़ाज़ी से काम लिया जाता तो यही बड़े-बड़े क़िस्से हो सकते थे। बजुज़ तीसरे क़िस्से के हर क़िस्से में हुस्न या इश्क़ की चाशनी मौजूद है और उसके जो हिस्से दिखाये गए हैं वह एक निहायत ही नाज़ुक ख़याल शायर के सिवा हर शख़्स का हिस्सा नहीं। हालाँकि ये क़िस्से नस्र में हैं और पैरा-सुख़न में कहीं शायरी का इलाक़ा नहीं। ताहम यह कहा जा सकता है कि इनकी तसनीफ़ में शायरी की गई है, क्योंकि जो लुत्फ़ नज़्म में हासिल हो सकता है वह इस नस्र में मौजूद है। हम बिला मुबालिग़ा कह सकते हैं कि सोज़े वतन आज की तसानीफ़ में अपनी तरह की बेहतरीन तसनीफ़ कहलाने का मुस्तहिक़ है। इसके क़िस्से पढ़ते हुए हमको उर्दू के बेहतरीन फ़सानानिगारों की याद आती है। ज़ुबान की सफ़ाई, बयान की रवानी, तख़य्युल की चुस्ती और ख़्याल की शीरा बावजूद इख़्तसार के तमाम बरकात इस ख़ूबी से इस छोटी-सी किताब में जमा हो गए हैं कि बेसाख़्ता तारीफ़ करने को जी चाहता है। हमारी राय में सोज़ेवतन से हमारे मज़ाक़ शाइस्ता का नाम हमेशा रोशन रहेगा। उर्दू में ऐसी तसनीफ़ के लिए हमारी आँखें देर से मुन्तज़िर थीं। नवाबराय साहब ने और नावल भी तसनीफ़ किए हैं। मगर इस वक़्त हमको सिर्फ़ सोज़ेवतन की

खामियाँ और कमजोरियाँ दिखानी पड़ी। लेकिन इस तसनीफ पर जिस कदर फख्र किया जाए कम है। आखिर में हम उम्मीद करते हैं कि इस किस्म की तसनीफ की मुल्क में तरक्की होगी और नाजुक खयाल अहले कलम इस तर्ज में अपनी जुलाना कलम के जौहर दिखाने में दरेग न करेंगे।

इस पुस्तक ने १६०८–६ में कितनी खलबली मचा दी होगी इसका अन्दाज इस बात से हो सकता है कि इण्डियन प्रेस इलाहाबाद की मासिक पत्रिका सरस्वती में—इसमें प्रेमा तथा कृष्णा की आलोचना तो नहीं मिली—इस उर्दू कहानी संग्रह की आलोचना हुई।

दिसम्बर १६०८ की सरस्वती में लिखा है— सोज़वतन पुस्तक उर्दू में है। इसमें स्वदेश प्रेम-सम्बन्धी पाँच आख्यायिकाएं हैं। आख्यायिकाएँ मनोरंजक और उपदेशपूर्ण हैं। इन्हें पढ़कर स्वदेश भक्ति का पवित्र भाव हृदय में अंकुरित हो जाता है। आजकल ऐसे किस्सों की बड़ी आवश्यकता है। इन्हें पढ़कर लोग बहुत लाभ उठा सकते हैं। कागज और छपाई उत्तम है। इसकी रचना उर्दू के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत नवाबराय ने की है। मूल्य साढ़े चार आने। मिलने का पता—बाबू विजयनारायणलाल नया चौक कानपुर।

विजयनारायणलाल धनपतराय की विमाता के भाई थे और ऊपर दिये गए पते से ज्ञात होता है कि इस पुस्तक को धनपतराय ने स्वयं ही प्रकाशित किया। प्रेस एक्ट के अधीन हर पुस्तक पर प्रेस का नाम छपना जरूरी था। इसके अलावा लेखक का नाम पता और हस्ताक्षर भी भेजने होते थे। 'ज़माना प्रेस में छपी यह पहली किताब थी। शायद कानून का उन्हें पता न था इसी से लेखक का पता नहीं दिया गया था। प्रेस का नाम भी न छापा।



८

देश-प्रेम के कारण सरकारी कोप

सोज़े वतन' में तो देश-प्रेम की कहानियाँ थी ही, धनपतराय के निबन्ध और लेखों में भी देश-प्रेम की झलक मिलती है। 'इश्क दुनिया और हुब्बे वतन' का आधार तो मैज़िनी का जीवन था। नवाबराय ने गैरीबाल्डी का रेखाचित्र भी लिखा। मई १९०८ में स्वामी विवेकानन्द पर एक लेख लिखा। इनके अलावा मई-जून १९०९ अंक में एक अन्य महत्त्वपूर्ण लेख भी लिखा, जिसका विषय उनकी नौकरी से सम्बद्ध था। विषय था 'यू०पी० में इब्तिदाई तालीम'। इस लेख के कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं, जिनसे धनपतराय के सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण का पता चलता है—

'सितम्बर १९०८ के 'मॉडर्न रिव्यू' में मिस्टर निहालसिंह ने एक नादिर मज़मून लिखा है जिसमें अमरीका के एक मौज़ा की कैफ़ियत बयान की है। उसे पढ़कर हैरत भी होती है और मायूसी भी। हैरत इसलिए कि तालीम की जो आसानियाँ और अस्बाब इस गाँव में हैं वे हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े शहरों को नसीब नहीं। और मायूसी इसलिए कि शायद हिन्दुस्तान की किस्मत में तरक्की करना लिखा ही नहीं। दो हज़ार आबादी का मौज़ा और हाई स्कूल। उसकी इमारत, उसका कुतुबखाना, उसकी लेबोरेटरी पर हिन्दुस्तान का कोई कालिज नाज़ कर सकता है। क्या हिन्दुस्तान के भी कभी ऐसे नसीब होंगे?

अब एक तरफ़ तो इस देहाती मदरसे को रखिए और दूसरी तरफ़ एक हिन्दुस्तानी देहाती मदरसे का ख़याल कीजिए। एक दरख़्त के नीचे, जिसके इधर-उधर कूड़ा-करकट पड़ा है, और जहाँ शायद बरसों से झाड़ू नहीं दी गई, एक फटे पुराने टाट पर बीस-पच्चीस लड़के बैठे ऊँघ रहे हैं। सामने एक टूटी हुई कुर्सी और पुराना मेज़ है। उस पर हज़रत मुदर्रिस की जान मुतमक्किन है। लड़के झूम-झूमकर पहाड़े रट रहे हैं। शायद किसी के बदन पर साबुन छुआ भी न होगा। धोती रान के ऊपर तक चढ़ी हुई। टोपी मैली-कुचैली, सूरतें गुमनाम

चेहरे पज़मुर्दा। यह आर्यावर्त का मदरसा है जहाँ किसी ज़माने में तक्षशिला और नालन्दा दारुलउलूम थे। किस कदर तफावत है! हम तहज़ीब की दौड़ में दीगर अक्वाम से किस कदर पीछे हैं कि शायद वहाँ तक पहुँचने का हौसला भी नहीं कर सकते।

हमारी इब्तदाई तालीम में इस्लाह और तरक्की के लिए सबसे बड़ी ज़रूरत लायक मुदर्रिसों की है और लायक आदमी आठ रुपये या नौ रुपये माहवार मशाहरे पर दुनिया के पर्दे में कहीं नहीं मिल सकते। जिस शख्स को फिक्रमुआश से आज़ादी ही नसीब न होगी वह तालीम की तरफ क्या खाक रुजू होगा! ऐसे बहुत-से मकतब हैं जहाँ अभी तक मुदर्रिसों को चार और पाँच रुपये से ज़्यादा मशाहरा नहीं मिलता। ऐसे आदमियों के हाथों में हमारी सरकार ने रियाया की तालीम रख दी है। और ताज्जुब किया जाता है कि तालीमी हालत क्यों ऐसी रद्दी है। जब सरकारी मुदर्रिसों का यह हाल है तो इमदादी मुदर्रिसों का ज़िक्र ही क्या? इनमें कम-से-कम तीन चौथाई ऐसे हैं जिन्हें सरकार चार रुपये माहवार इमदाद देती है और इसमें एक आना मनीआर्डर का महसूल कट जाता है। तीन रुपया पन्द्रह आने में कौन महीने भर दर्दसरी गवारा करे! शहरों में कहारों की तनख्वाह छः और सात रुपया माहवार है। बल्कि किसी औकात इससे भी ज़्यादा। मामूली मज़दूर चार आने पैसे रोज़ कमा लेता है मगर गरीब मुदर्रिस उनसे भी ज़लील समझा जाता है। मजबूरन या तो वह गरीब खेती की तरफ रुजू हो जाता है या सरकारी कायदे के खिलाफ पाव आना की जगह एक आना या उससे ज़्यादा फीस लेना शुरू करता है। जिसका नतीजा यह है कि लड़कों की तादाद में अफ़ज़ूनी नहीं होने पाती। बहुत-से इमदादी मदरसे तो सिर्फ इसलिए कायम हैं कि एक गरीब आदमी तीन चार रुपये घर बैठे पा जाता है। फर्ज़ी लड़कों के नाम लिख लिये जाते हैं और जब कोई अफसर मुआइने के लिए पहुँच जाता है तो चन्द लड़के इधर उधर से जमा करके दिखा दिए जाते हैं।

अध्यापकों की कठिनाइयों की ओर इशारा करके आगे लिखा— 'नारमल स्कूलों से जो लोग मश्क़ेतालीम सीखकर आते हैं वे भी मदरसों में आकर अपना सब तरीका भूल जाते हैं। बेचारे क्या करें! वहाँ उन्हें एक वक्त एक दर्जे की तालीम का सबक दिया गया यहाँ उन्हें एक वक्त में चार दर्जे पढ़ाने को मिले। उन उसूलों पर क्योंकर अमल करें? एक दर्जे के पढ़ाने में मशगूल हुए तो दूसरे दर्जे का हिसाब ले लिया। किसी दर्जे का लिखना किसी दर्जे को जुगराफिया। मोअल्लिम तो एक ही है। किस लिखने की इस्लाह करे! किस हिसाब समझाये!

इसे बाकायदा तौर पर जुगराफ़िया की तालीम दे। गरज एक ख़्वाब-सा मालूम लगता है। लड़कों ने नक्शा में रिम को मशगूल देखा तो और गप्पें शुरू किया।

अध्यापकों की संख्या बढ़ाने की अपील पर और इस काम पर व्यय का ज़िक्र कर नवाबराय लिखते हैं— गुज़िश्ता सूबा मुत्तहिदा में १६ लाख इब्तदाई तालीम में सरफ़ हुआ और माहवार औसत फ़ी तालिबे इल्म साढ़े तीन आना। यह औसत दूसरे मुहज्ज़िब मुल्कों के मुकाबले में बहुत ही कम है। क्या सरकार ऐसे पाक काम के लिए पचास लाख सालाना भी खर्च नहीं कर सकती? रुपये की किल्लत एक ऐसा हीला ए नारवा है जो गवर्नमेंट के लिए कभी सादिक नहीं कहा जा सकता। गवर्नमेंट के जराया नामहदूद हैं और इतनी रकम वह आसानी से खर्च कर सकती है। जब जंगी मसारिफ़ इस कसरत से साल-ब-साल बढ़ते चले जाते हैं, अफ़सरों के ऐश और सहूलियतों पर रुपया कौड़ियों की तरह लुटाया जा रहा है तो अफ़लास या तंगदस्ती का हीला कभी काबिल कबूल नहीं ठहर सकता। यह भी गवर्नमेंट की एक चालाकी है कि उसने डिस्ट्रिक्ट बोर्डों पर तालीम का भार डालकर अपने तईं सबकदोश कर लिया। और अब एक कम जहान पाक के मसल पर अमल कर रही है। बोर्ड कहाँ से रुपया लगाए? जब प्राविंशल गवर्नमेंट अपने मुकर्ररह हिस्से को सख्ती से वसूल करती चली जाती है।

आगे चलकर नवाबराय कहते हैं कि अध्यापकों को गाँव के पोस्ट आफ़िस का चार्ज देकर उनके अपने अध्यापन के काम में रुकावट डालना है। लगान के मौसम में एक-एक दिन कई-कई सौ के मनीआर्डर आ जाते हैं और हर एक मनीआर्डर पर मुदर्रिस को कुछ आने-पाई मिल जाते हैं। यह बहुत नेचूरल बात है कि मुदर्रिस जैसी छोटी हैसियत का आदमी ज़ाती फ़ायदे के इन मौकों को हाथ से न जाने दे। अफ़सोस की बात है कि हमारी गवर्नमेंट की निगाहों में हमारी तालीम की कोई वकअत नहीं।

प्राइमरी शिक्षा के महत्त्व को बतलाकर सिलेबस के बारे में वह लिखते हैं—

हमारा ख़्याल है कि अगर प्राइमरी दर्जे की तालीम मगर ज़रा और दवाम वसीह कर दी जाए तो वो काश्तकारों की ज़रूरियात के लिए काफ़ी हैं। रीडरें जो इस वक्त मुरव्विज हैं ज़बान के लिहाज़ से सब नाकारा हैं और उनके पढ़ने से लड़के बमुश्किल मामूली बोलचाल में न तो हिन्दी ज़बान जानते हैं और न उर्दू। उनको ज़बान की इस्लाह होनी चाहिए ताकि लड़के रामायण तो समझ सकें। कायदे की कोई ज़रूरत नहीं। खारिज कर देना चाहिए। जुगराफ़िया की तालीम काफ़ी है। हिसाब में भी कुछ कसर नहीं है। अपनी मवासात की मश्क

ज्यादा होनी चाहिए । ड्राईंग फिजूल है । इसके बजाय तन्दुरुस्ती के मुतग्राल्लिक एक छोटी-सी प्राइमर होनी चाहिए । और बयायद जवान की जगह पर जरायत के कुछ उसूल सिखाए जाने चाहिए । इस वक्त मतो कितावत का तरीका नही सिखाया जाता । यह एक बहुत जरूरी बात है और इसका भी इंतज़ाम होना चाहिए । तब इब्तिदाई तालीम का मसला गोया हल हो जाएगा ।

मदरसा के लिए इमारत का नक्शा उन्होंने इस प्रकार खींचा है— मदरसों की इमारती हालत निहायत अफसोसनाक है । तहसीली मदरसा मे तो कहीं-कही पुख्ता मकानात बन गए हैं मगर लोग्रर प्राइमरी और ग्रपर प्राइमरी मदरसों की हालत बहुत रद्दी है । उन्हें देखकर मवशीखाना या मोहताजखाना का खयाल पैदा होता है । दीवारें बोसीदा दरवाजे शिकस्ता हाल छतें गिरी हुई फर्श ज़मीन कच्ची । यहां भी रिश्वत और गबन की गरमबाजारी है । अगर किसी तामीर के लिए हज़ार रुपया मजूर हुआ है तो यह यकीनी बात है कि कम अज़-कम निस्फ रकम ज़रूर दरमियानी मनाज़ल तय करने मे सर्फ हो जाएगी । ज़िम्मेदार अफसरों में इत्मीनान का माद्दा ऐसा सर्द हो गया है कि इस बारे खर की अमानत मे भी खयानत करने से गुरेज नही करते ।

आगे चलकर नेताओं के रवैये पर दो आँसू बहाये हैं— हमारी तालीम का तो यह हाल है और हमारे पब्लिक काम करने वाले इन मसलों की तरफ से बिलकुल गाफिल बैठे हुए हैं । कितने ऐसे अखबारनवीस हैं या रेज़ोल्यूशन पास करने वाले वुकला हैं जिन्होंने किसी ज़िला मे दौरा करके यह तहकीक किया है कि कितने मदरसों मे इमारत है और कितनों मे नही । डाइरेक्टर साहब की रिपोर्ट से ज़ाहिर नही होता कि फीसदी कितने मदारस सरकारी इमारत पर कब्ज़ा कर सकते हैं । डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर साहबान जैसे लायक और तालीम याफ्ता होते है उनसे यह उम्मीद करना कि इन मसलों पर वह कुछ तहरीक कर सकते हैं बिलकुल अवस है ।

यह भी क्या खूब बात है कि जब यह लेख धनपतराय ने ज़माना मे छपने के लिए भेजा उनका डिस्ट्रिक्ट बोर्ड हमीरपुर के अधीन सब डिप्टी इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्ज के पद पर नियुक्ति की बात चल रही थी । २८ जून १९ ९ को उन्होंने महोबा मे इस नये पद का चार्ज लिया । उनका वेतन भी तीस रुपया महीना से बढ़कर पचास रुपया महीना हो गया । इस पद की स्वीकृति का एक कारण यह था कि विजयनारायण धनपतराय के साथ ही रहते थे और धनपतराय ने सोचा कि जब ज़िले का दौरा करेंगे तब उन्हें घरवालों की विशेष चिन्ता न करनी होगी ।

जिस मोहल्ले में उन्होंने घर लिया वह कायस्थों का मोहल्ला था। धनपतराय सबके साथ भाईचारे का व्यवहार करते। सब लोग तीज त्योहार पर उनके यहाँ आते। एक बार जब वहाँ की प्रथा के अनुसार लोगों के किसी बारात में चले जाने पर एक हाथ में आरसी और दूसरे में बेलन लिये औरतें गा बजा रही थीं, धनपतराय पीछे रह गए थे। जब औरतें मर्दों की मरम्मत करने को आईं तो धनपतराय डर के मारे बाहर दरवाज़े के पास चारपाई से उठकर अन्दर कमरे में भाग गये।

महोबा में यह भी प्रथा थी कि सरकारी अफ़सर दूध घी मुफ़्त लेते थे। बेगार भी लेते थे। धनपतराय ने यह सब लेने से इन्कार किया। वहाँ के रईसों ने कहा यदि आप बन्द कर देंगे तो आगे से ये लोग किसी को कुछ न देंगे। उनके ज़ोर डालने पर धनपतराय केवल इतना ही माने कि मैं तो न लूँगा मगर नौकर ले लेंगे। दूध तो इतना मिलता था कि नौकर लोग खोया बनाकर खाते थे। स्थानीय प्रथा के अनुसार जब लोग तिलक लगाकर रुपया देते तो धनपतराय दही अक्षत माथे पर लगवा लेते पान-बीड़ा मुँह में डाल लेते और बगलगीर हो जाते परन्तु रुपया न लेते। कहते यह मेरे सिद्धान्त के खिलाफ़ है। आप इसके लिए मुझे क्षमा करें।

धनपतराय मातहतों से मित्र का व्यवहार करते। जो उम्र में बड़ा होता, उसकी इज़्ज़त करते। शिक्षाविभाग के अफ़सर भी उनसे खुश थे।

जब वह महोबा आये तो चाची, उनके भाई और पुत्र भी साथ आये थे। तीन महीने बाद चाची अपने दूसरे भाई के यहाँ कानपुर लौट गईं। कुछ दिनों बाद विजयनारायण की मृत्यु हो गई। विजयनारायण उनके दौरे पर जाने के बाद उनके घर का ध्यान रखते थे। धनपतराय को उनके देहान्त से बड़ा दुःख हुआ। इस सदमे से कमर टूट गई। शिवरानी अकेली हो गईं। जिस इत्मीनान को बड़ी आरज़ुओं और तमन्नाओं से यहाँ हासिल किया था वही अब जी का जंजाल हो रहा है। बीवी को तनहा छोड़कर दौरे पर कैसे जाऊँ।

धनपतराय बीवी से कहते, 'तुम भी दौरे पर मेरे साथ चला करो। यहाँ तुम अकेली पड़ी रहती हो यहाँ मुझे फ़िक्र रहता है।'

परन्तु शिवरानीदेवी को दौरे पर जाना पसन्द न था। 'कौन हिन्दुस्तानी अपनी बीवी को साथ दौरे पर घुमाता है? एक तमाशा-सा होगा।'

'मैं चाहता हूँ तुम पुरानी बातों को अपने दिमाग से निकाल दो। मुझे तो तमाशा-सा नहीं मालूम होता। अंग्रेज़ों को देखो। कितने आराम से रहते हैं।'

'यह हिन्दुस्तान है।'

तभी तो परेशान होते हैं। मैं दौरे पर रहूं और तुम यहाँ अकेली इसमें क्या लाभ है ?

लज्जा मालूम होती है। और फिर आज यहाँ कल वहाँ। क्या आराम होगा ?

मैं भी तो रोज़ घूमता फिरता हूँ।

आपको तो घूमने के लिए सरकार वेतन देती है ऊपर से भत्ता।

शिवरानीदेवी नहीं मानी। दौरे पर जाने की अपेक्षा वह अकेली रहना बेहतर समझती थी।

दौरे पर भी लिखने का काम जारी रहता। जब मुआइना करना होता तो उस काम को मुदर्रिसों के हाथ देते। कहते क्या करूँ मैं जो मुआइना करता हूँ तो मुदर्रिस लोग लड़कों के सामने पर्चा छोड़ आते हैं। इस वास्ते यह काम मैं उन्हीं पर छोड़ देता हूँ। कम-से-कम जिससे यह तकलीफ उन्हें न उठानी पड़े। वे बेचारे खुश भी रहते। अच्छा मुआइना हो जाने पर उनकी तरक्कियाँ भी होती हैं। उन्हें अपने अफसरों की सहानुभूति तो नहीं मिली। मातहतों के साथ आपने भाईचारा हमेशा किया क्योंकि अफसरी करना उन्हें पसन्द न था। उनका कहना था कि अफसर बनकर इन्सान इन्सान नहीं रह जाता। ईश्वर मुझे इससे हमेशा दूर रखे।

धनपतराय घोड़े पर चढ़कर दौरा करते थे। अपने घोड़े को वह बड़े प्यार से रखते। सर्दियों में वह स्वयं कम्बल ओढ़ते और दुशाला घोड़े को ओढ़ाते।

फिर बैलगाड़ी की बात चली। बैलगाड़ी न लेता तो कम से कम बीस रुपया उसका भत्ता मिलता। पर क्या करूँ ? रुपये नहीं हैं।

आखिर शिवरानीदेवी ने अपनी जोड़ी पूंजी में से डेढ़ सौ रुपये उनको दिये। बैलगाड़ी आ गई। एक बार धनपतराय सपरिवार इसमें बैठकर चरखारी में मेला देखने गये। चरखारी रियासत के राजा ने खूब आवभगत की। शिवरानी देवी लिखती हैं— कभी-कभी घूमने की मेरी इच्छा होती तो मैं कहती कि जंगल में चलना चाहिए। आप सहर्ष तैयार हो जाते। हम दोनों जंगल के मुहाने ही में गाड़ी छोड़कर भीतर चले जाते। दिन भर वहीं झरनों में पानी पीते फल खाते पहाड़ों पर चढ़कर सैर करते। शाम तक महोबा आ जाते।

महोबा ही में धनपतराय के दो लड़कियाँ हुईं। एक तो बाल्यावस्था ही में मर गई दूसरी कमला जीवित रही। कमला का जन्म १९१२ में हुआ था।

धनपतराय को सारे जिले का दौरा करना होता था और कभी-कभी तो छह-छह महीना वह लगातार दौरे पर ही रहते थे।

एक बार जब दौरे पर ही थे कि एक महत्वपूर्ण घटना घटी। इसका सम्बन्ध उनके कहानी संग्रह के प्रकाशन से था। जैसा हम कह चुके हैं 'सोज़े वतन' पर प्रिंटर और पब्लिशर का नाम नहीं छपा था। 'नातजुर्बेकारी और प्रेस एक्ट के क़वायद से नावाकफ़ीयत' में ग़लती हो गई थी। मजिस्ट्रेट ने इस भूल के लिए एडीटर 'ज़माना' पर पचास रुपया जुर्माना किया। सी० आई० डी० द्वारा जाँच-पड़ताल में यह भी पता लग गया कि नवाबराय तो केवल उपनाम है वास्तव में यह शिक्षा विभाग के एक सरकारी नौकर धनपतराय हैं। एक सरकारी मुलाज़िम और 'सोज़े वतन' जैसी मसमूम किताब का मुसन्निफ़। तोबा! तोबा!! सी० आई० डी० की रिपोर्ट ऊपर डिस्ट्रिक्ट कलक्टर तक पहुँची। अब सुनिए प्रेमचन्द के अपने शब्दों में—

एक दिन मैं रात को अपनी रावटी में बैठा हुआ था कि मेरे नाम ज़िलाधीश का परवाना पहुँचा कि मुझसे तुरन्त मिलो। जाड़े के दिन थे। साहब दौरे पर थे। मैंने बैलगाड़ी जुतवाई और रातों-रात तीस-चालीस मील तय करके दूसरे दिन साहब से मिला। साहब के सामने 'सोज़े वतन' की एक प्रति रखी हुई थी। मेरा माथा ठनका। उस वक्त मैं नवाबराय के नाम से लिखा करता था। मुझे इसका कुछ-कुछ पता मिल चुका था कि खुफ़िया पुलिस इस किताब के लेखक की तलाश में है। समझ गया, उन लोगों ने मुझे खोज निकाला और उसी की जवाबदेही करने के लिए मुझे बुलाया है। साहब ने मुझसे पूछा— यह पुस्तक तुमने लिखी है?

मैंने स्वीकार किया।

साहब ने मुझसे एक-एक कहानी का आशय पूछा और अन्त में बिगड़कर बोले—'तुम्हारी कहानियों में सिडीशन भरा हुआ है। अपने भाग्य को बखानो कि अंग्रेज़ी अमलदारी में हो। मुग़लों का राज्य होता तो तुम्हारे दोनों हाथ काट लिए जाते। तुम्हारी कहानियाँ एकांगी हैं, तुमने अंग्रेज़ी सरकार की तौहीन की है आदि।' फ़ैसला यह हुआ कि मैं 'सोज़े वतन' की सारी प्रतियाँ सरकार के हवाले कर दूँ और साहब की अनुमति के बिना कभी कुछ न लिखूँ। मैंने समझा चलो सस्ते छूटे। एक हज़ार प्रतियाँ छपी थीं। अभी मुश्किल से तीन सौ बिकी थीं। शेष सात सौ प्रतियाँ मैंने 'ज़माना' कार्यालय से मँगवाकर साहब की सेवा में अर्पण कर दीं।

मैंने समझा था बला टल गई। किन्तु अधिकारियों को इतनी आसानी से सन्तोष न हो सका। मुझे बाद को मालूम हुआ कि साहब ने इस विषय में ज़िले के अन्य कर्मचारियों से परामर्श किया। सुपरिंटेंडेंट पुलिस का डिप्टी

कलक्टर और डिप्टी इन्सपेक्टर—जिनका मैं मातहत था—मेरी तकदीर का फैसला करने बैठे। एक डिप्टी कलक्टर साहब ने गल्पों से उद्धरण निकालकर सिद्ध किया कि इनमें आदि से अन्त तक सिडीशन के सिवा और कुछ नहीं है। और सिडीशन भी साधारण नहीं बल्कि संक्रामक। पुलिस के देवता ने कहा—ऐसे खतरनाक आदमी को जरूर सख्त सजा देनी चाहिए। डिप्टी इन्सपेक्टर साहब मुझसे बहुत स्नेह करते थे। इस भय से कि कहीं मुआमला तूल न पकड़ ले उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि वह मित्र भाव से मेरे राजनीतिक विचारों की थाह लें और उस कमेटी में रिपोर्ट पेश करें। उनका विचार था कि मुझे समझा दें और रिपोर्ट में लिख दें कि लेखक केवल कल्पना का उपासक है और राजनीतिक आन्दोलन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। कमेटी ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार किया। हालांकि पुलिस के देवता उस वक्त भी पैतरे बदलते रहे।

सहसा कलक्टर साहब ने डिप्टी इन्सपेक्टर से पूछा—आपको आशा है कि वह आपसे अपने दिल की बातें कह देगा?

डिप्टी साहब ने कहा—जी हाँ उनसे मेरी घनिष्ठता है।

आप मित्र बनकर उसका भेद लेना चाहते हैं। यह तो मुखबरी है। मैं इसे कमीनापन समझता हूँ।

डिप्टी साहब अप्रतिभ होकर हकलाते हुए बोले—मैं तो हुजूर के हुक्म

साहब ने बात काटी—नहीं। यह मेरा हुक्म नहीं है। मैं ऐसा हुक्म नहीं देना चाहता। अगर पुस्तक में लेखक का सिडीशन साबित हो सके तो खुली अदालत में मुकदमा चलाइए नहीं धमकी देकर छोड़ दीजिए। मुँह में राम बगल में छुरी मुझे पसन्द नहीं।

जब यह वृत्तान्त डिप्टी इन्सपेक्टर साहब ने कई दिन बाद खुद मुझसे कहा तो मैंने पूछा—क्या आप सचमुच मेरी मुखबरी करते?

वह हँसकर बोले—असम्भव। कोई लाख रुपया भी देता तो न करता। मैं तो केवल अदालती कार्रवाई रोकना चाहता था और वह रुक गई। मुकदमा अदालत में जाता तो सजा हो जाना यकीनी था। यहाँ आपकी पैरवी करने वाला भी कोई न मिलता मगर साहब है शरीफ आदमी।

मैंने स्वीकार किया—बहुत ही शरीफ

धनपतराय को प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि आइन्दा वे जो कुछ लिखेंगे उसे कलक्टर को दिखाकर उनकी आज्ञा लेकर ही छपने के लिए भेजेंगे। सोचा सस्ते छूट गए वरना क्या अजब था जेल की हवा खानी पड़ती!

घर पर आकर बीबी को सारा किस्सा सुनाया।

शिवरानी देवी ने पूछा, 'तो फिर लिखना भी अब बन्द ही समझूँ ?'

धनपतराय बोले, 'लिखूँगा क्यों नहीं ? उपनाम रखना पड़ेगा।'

धनपतराय कितनी दुविधा में होंगे, इसका पता इस बात से लगता है कि 'ज़माना' के मार्च, १९१० के अंक में उनकी एक कहानी 'गुनाह का अग्निकुण्ड' छपी। इसके अन्त में लेखक का दिया गया नाम था 'अफसाना मुहिब'। अप्रैल के अंक में 'मेरा दरवेश' की पहली किश्त में लेखक का नाम भूल से नवाबराय छप गया, परन्तु मई, जून और जुलाई के अंकों में नवाबराय का नाम नहीं छपा।

मई, १९१० के एक पत्र में दयानारायण निगम को उन्होंने लिखा—

'जैसा आप फरमाते हैं वैसा ही होगा। मेरे किस्से अब कहीं न जाएँगे। मुआविज़े का ज़िक्र मुझे खुद मकरूह मालूम होता है, मगर बात यह है कि छोटे किस्सों के गढ़ने में दिमाग़ी उलझन बहुत ज़्यादा होती है। और तावक़्ते कि तबियत को यह मज़ा न हो कि इससे कुछ मुआविज़ा वसूल होंगे, वह उस काम की तरफ रुजू नहीं होती। हक़ मानिए यही बात है।

'नवाबराय तो ग़ालिबन कुछ दिनों के लिए इस जहान से गये। दोबारा याददिहानी हुई है कि तुमने मुआहिदे में गो अखबारी मज़ामीन नहीं लिखा, मगर उसका मंशा हर किस्म की तहरीर से था। गोया मैं कोई मज़मून किसी तरह किसी मज़मून पर—हाथीदाँत पर ही क्यों न हो—लिखूँ, मुझे पहले वह जनाब [illegible] कलक्टर साहब बहादुर की ख़िदमत में पेश करना पड़ेगा। और मुझे हफ़्ते-दमाहे लिखना नहीं, यह तो मेरा रोज़ का धन्धा ठहरा। हर माह एक मज़मून साहब बहादुर की ख़िदमत में पहुँचेगा तो वह समझेंगे मैं अपने फ़राइज़े सरकारी में तग़ाफ़ुल करता हूँ। और काम मेरा सब चौपट हो जाएगा। इसलिए कुछ दिनों के लिए नवाबराय मरहूम हुए। उनके जानशीन कोई और साहब होंगे। आप मेरा मज़मून [illegible] के बाद मुंशी चिरागअली को दे दिया करेंगे। मुआविज़ा की निस्बत जो आपने फ़रमाया वह मुझे मंज़ूर है। मगर मज़मून इतना बड़ा हो कि एक नम्बर में लिखा जाए तो पन्द्रह और अगर एक से ज़्यादा नम्बरों में लिखा—दो या तीन में—तो उसका [illegible]। अब मैं फिर कहता हूँ, और पहले भी कह चुका था, मगर किसी वजह से यह ख़याल आपने नज़रअन्दाज़ कर दिया कि [illegible] मैं अपने [illegible] में नहीं लाऊँगा। [illegible] होंगे। इसलिए [illegible] और [illegible] का इनआम न [illegible] करना चाहिए। [illegible] से मालूम होता है कि आप कुछ करना चाहते हैं, मगर करते नहीं। ये सब मज़ामीन

जिनका भागाऊ कुण्ड म होना है और ईश्वर न भाना तो शायद कुछ दिना तक यह सिलसिला जारी रहे जल्द या वन्द किस्सा का शक्ल म निकलगे। मगर आप निकालेंगे ना चौथाई नफा मरा और मैं निकालगा ता चौथाई नफा आपका। गोया मरा और आपका इन पर बराबर का अख्तियार रहेगा। मरा नाता उनसे जमाना म निकल चुकन क बाद भी लगा रहेगा।

किताबों की फहरिस्त भजी थी। उनकी कीमत मुनजर साहब न न लिखी। स्वामी रामतीर्थ के लिए मैं क्या फिक्र करू। मगर आप इन्हें टक्स्ट बुक कमटी म भेजकर इनाम की मद म मजूर करा लें तो अलबत्ता सौ-पचास जिल्दें निकलवा सकता हू। आप अब कभी कभी इलाहाबाद की सैर करते नजर आया करें और इनामी किताबें छापा करन की फिक्र करें। मैं इस काम म आपकी कलमी मुआविनत करने को आमादा हू। किताबा की लिखाई वगैरा अच्छी हो और मजूर हो जाएँ तो कुछ फायदे की सूरत निकल सकती है।

और कहिय क्या खबर है? वल्दा तो कराए प्रातदीन म पड़ा भुन रहा है। इमसाल खस की टट्टी बनवाई कि नहीं? वाह क्या ठडी हवा है और क्या फरहतबख्श! याद स रूह फड़क गई। वाए बरहाल मां कि इस टट्टी की बहार से रह हाग।

मैंने मखजन माँगा था वह आपने न भेजा। कोई नावल गुल्दी बाजार से लिया हो तो वह भी बरग भेजिय। इलाहाबाद की लाइब्रेरी को निस्बत दर्याफ्त किया था मगर वह भाऊट स्टेशन म किताब नहीं भेजते। अब की इलाहाबाद जाऊँगा तो अपने खुस खाना को अपना कायम मुकाम बना आऊगा। वह अपने नाम से किताबें लेकर मेरे पास भेज दिया करेंगे। जून म इलाहाबाद बनारस वगैरा की गरम हवा खाऊँगा।

इसी पत्र म लिखत हैं

हिंदी परचा का क्या हश्र हुआ? यानी उसकी तजवीज खटाई म पड गई या बाकी है? निकलने वाला हो तो हिन्दी लिखने की आदत डालूँ।

अब की सरस्वती न नारद वगैरा पर तीन तसवीरें अच्छी निकाली और सूरदास पर मजमून अच्छा है। आप भी हिन्दी लिटरेचर पर मजामीन लिखाने का ढंग निकालिए। सूरज नारायण महर शायद लिखें। और नजदीक व दूर की जो खबर हो पास-पड़ोस की उससे मुत्तिला कीजिए।

नजर साहब ने अपने रसाले को बिलकुल इसलामी ढंग पर चलान का बीड़ा उठाया है।

अगली कहानी 'रानी सारन्धा' जमाना के अगस्त सितम्बर १६१० अक म

छपी। मगर इस पर लेखक का नाम नहीं छपा। सब सर्वाधिकार सुरक्षित रख गए हैं। 'मर्यादा' इलाहाबाद में कहानी और लेख छपते। इन पर बेनाम लिखा जाता। 'बड़ी बहन', 'खौफे रुसवाई', 'सिंगारदान' और 'शायद' वगैरह मार्मिक कहानी भी इसी मासिक में छपी।

हम पाठक का ध्यान इस तथ्य की ओर भी खींचना चाहते हैं कि सोज़े वतन पर पाबंदी लगाए जाने के बावजूद भी धनपतराय अपना दूसरा कहानी संग्रह छपवाने के लिए उत्सुक थे।

एक कहानी 'विक्रमादित्य का तेगा' 'ज़माना' को भेजते हुए निगम को लिखते हैं— 'यह किस्सा मिलाकर मेरे पाँच किस्सों का मजमूआ निकालने को काफी मसाला जमा हो जाएगा। अग्निकुण्ड, घर (दरवेश), सारंधा वगैरह माहसिन (जो अदीब में निकलेगा) और विक्रमादित्य का तेगा'। अगर आप इस मजमूआ को निकालेंगे तो मैं इसमें कागज़ और लिखाई के मुतअल्लिक जिस कदर सर्फा आप तजवीज़ करेंगे दूंगा। और अगर आप खुद निकालें तो और भी अच्छा। जैसा मुनासिब समझें, करें। मगर ऐसा हो कि नये साल तक तैयारी हो जाए। इस मजमूआ का नाम 'बर्गे सब्ज़'[1] सोचा है। शायद आँजनाब को पसन्द आए। शायद इसलिए कि मैं नामों में आपकी पसन्द का कायल हूँ।'

दयानारायण निगम ही ने नवाबराय के जानशीन का नाम प्रेमचन्द रखा।

धनपतराय ने निगम को लिखा— 'प्रेमचन्द अच्छा नाम है। मुझे भी पसन्द है। अफसोस सिर्फ यह है कि पाँच-छः साल में नवाबराय को फरोग देने की जो मेहनत की गई वह सब अकारथ हो गई। यह हज़रत किस्मत के हमेशा महरूम रहे और गुमनाम रहेंगे।'

ज़माना के दिसम्बर १९१० के अंक में एक कहानी 'बड़े घर की बेटी'[2] के

---

1 इस नाम का कोई संग्रह न छपा। शायद इसलिए कि दयानारायण निगम को 'सोज़ेवतन' के बारे में परवाना मिले अभी थोड़ा ही समय हुआ था। बाद ये कहानियाँ 'प्रेम पचीसी' (उर्दू) में छपीं।

२ श्री गुप्त ने 'हंस' के प्रेमचन्द-अंक में अपने लेख में लिखा था कि प्रेमचन्द के नाम से छपी पहली कहानी 'ममता' थी और यह १९०८ या १९०९ की बात है। यह गलत है क्योंकि 'ममता' फरवरी १९१० के अंक में छपी। 'ज़माना' के पुराने अंकों से यही पता चलता है कि प्रेमचन्द के नाम से पहली छपी कहानी 'बड़े घर की बेटी' ही थी जो ज़माना दिसम्बर १९१० के अंक में छपी है।

शीर्षक से छपी। इस पर पहली बार प्रमचन्द का नाम छपा।

बहुत दिनों तक प्रमचन्द के उपनाम से लिखे किस्से केवल जमाना ही में छपवाये गए। अदीब के सम्पादक प्यारेलाल शाकिर ने एक बार पूछा कि आप प्रमचन्द का नाम उन कहानियों पर क्यों नहीं लिखते जो अदीब को भेजते हैं? धनपतराय ने उत्तर दिया— मैं मुंशी दयानारायण निगम से वायदा कर चुका हूँ कि प्रमचन्द के नाम से किसी और पर्चे में न लिखूंगा। बिला वजह उनका दिल दुखाना मुझे मंजूर नहीं।

इसका एक कारण और भी था जो उनके निगम को लिखे पत्र के अंश में विदित होता है। लिखते हैं— अब कुछ रुपया पैदा करने की बातचीत। अब की एजूकेशनल गजट इलाहाबाद ने जमाना से नक्ल किए हैं मगर हवाला नहीं दिया। खैर। वह जमाना के कायल जरूर मालूम होते हैं। क्या यह मुमकिन नहीं कि आपकी तरफ से मैं उसके लिए कभी-कभी मज़ामीन लिखा करूँ? मेरे लिए कानपुर का हर एक मजमून दिखाने की ऐसी बड़ी पख लगी है कि एक मजमून महीना में लौटकर आता है और छठे महीने छपता है। रियासत भोपाल अब जाकर छपा है। मगर एडीटर साहब तवील मजमून लेते ही नहीं। अगर आप इसमें कोई अम्र खिलाफ शान न समझें तो मैं कभी-कभी एक आध मजमून उर्दू और हिन्दी में लिखकर आपके पास भेज दूँ और आप इसे अपनी जानिब से इंस्पेक्टर साहब नारमल स्कूल के पास भेज दें। यही इस गजट के एडीटर हैं। मेरे ख़याल में इसमें कोई हर्ज नहीं है और न कोई कलमी बेईमानी है। इसका जवाब जरूर दीजिएगा।

आगे 'प्रेमचन्द' का नाम मैं वहाँ नहीं देना चाहता। नहीं मालूम यह हजरत हाथ-पैर सँभालने पर क्या लिख बैठें। इन्हें किस्सा गो ही रहने दीजिए। बैठे-बैठे प्रेम और वीर रस के किस्से लिखा करें।

— — —

९

प्रेम और वीर रस की कहानियाँ

प्रेमचन्द के नाम में ही कुछ जादू है। कोह काफ की परियों या हातिम ताई के किस्सों का और फ़ारसी साहित्य का प्रभाव जो १९०७ से १९१० तक की लिखी गई नवाबराय की कहानियों में प्रकट है, प्रेमचन्द का उपनाम ग्रहण करते ही वह अध्याय समाप्त हो जाता है। बड़े घर की बेटी प्रेमचन्द की सर्वोत्तम कहानियों में से है और उस संसार की अच्छी-से अच्छी कहानियों में गिना जा सकता है। बेगरज मोहसिन और आह बेकस (गरीब की हाय) में सामाजिक जीवन विशेषतया निर्धन परन्तु स्वाभिमानी लोगों के जीवन पर रोशनी पड़ती है। परन्तु इस समय की अधिकतर कहानियाँ वीर रस की हैं। रूठी रानी का जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं। उससे विदित है कि प्रेमचन्द (अब हम धनपतराय तथा नवाबराय के नाम से जिक्र करते हैं) पर राजस्थान के इतिहास का बड़ा प्रभाव था। १९१० के बाद की कहानियाँ हमीरपुर (महोबा) के इधर उधर के क्षेत्रों में प्रचलित कहानियों तथा ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर लिखी गई। गरीब की हाय कहानी में प्रेमचन्द स्वयं बुन्देलखण्ड की दो प्रचलित कथाओं का हवाला देते हैं। और प्रेमचन्द की बहुत सी कहानियों में बुन्देलखण्ड के भूगोल का भी वर्णन नदियों पहाड़ों तथा स्थानों के नाम ज्यों-के त्यों रख दिए गए हैं।

हमीरपुर जिला उत्तर में यमुना नदी से लेकर दक्षिण में विन्ध्य पहाड़ियों तक फैला हुआ है। दक्षिणी भाग में विन्ध्य की छोटी छोटी पहाड़ियाँ हैं जिनके बीच से केन, धसान तथा बिरमा नदियाँ बहती हैं। पहाड़ियों पर वृक्ष बहुत कम हैं। वर्षा बहुत थोड़ी होती है। परन्तु चन्देला राजाओं, मुगल तथा मराठा राजाओं ने पानी को इकट्ठा करने के लिए जगह जगह बनावटी झीलें बनाईं जिनके कारण यह स्थान बहुत रमणीय बन गया। महोबा के पास एक झील है जिसका घेरा चार मील है।

हमीरपुर म पाँच तहसीलें हैं। महोवा तया कुलपहाड़ तहसीलो को मिला कर एक सब डिवीजन बनाया गया था। महोवा नगर का विशेष स्थान है। इसका इतिहास भी काफ़ी पुराना है।

बहुत दिनो पहले यहाँ गदरवार राजपूतो का राज्य था। नवीं शताब्दी म चन्देलो ने अपना राज्य स्थापित किया। इनकी राजधानी महोवा ही थी। फिर मुसलमान आये। १६८० ई० म प्रसिद्ध बुन्देल सूरमा छत्रसाल ने मुगलो को हराया। बुन्देलो को मराठा सेनाओ ने पराजित किया। फिर अंग्रेज आये। इतने आतंक के कारण इस डिस्ट्रिक्ट म जगह जगह छोटे छोटे किले हैं जहाँ छोटे छोटे राजे अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करते थे।

रानी सारन्धा का किला धसान नदी के किनारे पर था और यह कथा भी एक बुन्देल राजा की है। राजा हरदौल भी एक बुन्देल राजा की कहानी है। आल्हा कहानी भी चन्देल इतिहास से ली गई है। गरीब की हाय म एक स्थान पर प्रेमचन्द ने लिखा है कि रानी सारन्धा और राजा हरदौल की कहानियाँ प्रचलित हैं। गुनाह का अग्निकुण्ड (पाप का अग्निकुण्ड) राजपूताना के इतिहास की एक घटना पर आधारित है। विक्रमादित्य का तेगा या सम्बन्ध महाराजा रणजीतसिंह (जिसकी जीवनी पर प्रेमचन्द ने १९११ म एक लेख लिखकर ज़माना में छपवाया) से है। इस कहानी के बारे म प्रेमचन्द ने निगम को लिखा था— यह किस्सा मेरे खयाल म कई महीने से था। मैंने अपने खयाल म रवीन्द्रनाथ (ठाकुर) के तर्ज़ की कामयाबी के साथ पैरवी की है। मगर पूरी नकल नही है। प्लाट बिलकुल ओरिजिनल है। मैंने तो कई क़लम तोड दिए हैं। और दस पाँच वर्क भी काले कर डाले हैं। मालूम नहीं आपको भी पसन्द आता है या नहीं।

राजहठ म छोटी-छोटी रियासतो के शासन का मज़ाक उड़ाकर दिखाया गया है कि कोई राजकुमार यदि कुछ करना चाहे तो कर सकता है। मंजिले मक़सूद का प्लाट कुछ नहीं है। एक पद्यात्मक कहानी है। आलिम ए बेअमल म एक पति के छिछोरेपन का मज़ाक उड़ाया गया है। नमक का दारोगा म ईमानदारी के परिणाम पर रोशनी डाली गई है। तिरिया चरित्र अमृत अमावस की रात अंधेर निगाहे नाज़ मिलाप बाँका ज़मींदार, सिर्फ एक आवाज़ भी इसी समय प्रकाशित हुई।

ममता म दिखाया गया है कि माँ का प्रेम क्या कुछ कर सकता है। इसम ईसाई पादरियो के काम तथा आर्यसमाज के प्रचार की ओर संकेत भी है। विक्रमादित्य का तेगा कहानी के सम्बन्ध म एक पत्र म प्रेमचन्द ने निगम को

लिखा— रामचरण का खत मुझे उस वक्त मिला जब ड्रामा लिखने के लिए एक हफ्ते की मोहलत भी न थी। कुजा मैं और कुजा ड्रामा। गाना बिलकुल नहीं जानता। अगर कोई गाना (लिखाव) तो मैं अपने विक्रमादित्य को नया का ड्रामा बना सकता हूँ।

इसी पत्र में आगे चलकर एक वाक्य है— नया नावल शुरू कर दिया है मगर इसके लिए राजस्थान के मुतालिक़ा की ज़रूरत है। (यह पत्र १६१० के आख़िरी चरण का है। विक्रमादित्य का तेगा जनवरी १६११ के अंक में छपा था)। इसका संकेत शायद 'जलवा-ए ईसार' की ओर है। इसे १६१२ में इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ने छापा था। इस नावल के बारे में कुछ लिखने से पहले हम तात्कालिक नावलों के सम्बन्ध में प्रेमचन्द के विचारों के बारे में कुछ कहना आवश्यक समझते हैं। इस सम्बन्ध में हम प०र० के अगस्त १६१० में 'ज़माना' में 'उर्दू ज़बान और नावल' के शीर्षक से छपे एक लेख के कुछ अंश उद्धृत करते हैं।

अभी बहुत ज़माना नहीं गुज़रा कि उर्दू ज़बान में नावल नवीसी और नावलख्वानी का धूम थी। प० रतननाथ सरशार, मौलवी अब्दुल हलीम शरर, मुंशी आशिक हुसैन और हकीम मुहम्मद अली व रुस्वा सभी उन्हीं दिनों की याद हैं। ये लोग इस मुल्क के अदब में पायदारी का नाम कर गए। (क्योंकि उर्दू दुनिया के लिए नावल एक अछूती चीज़ थी)

रेनाल्ड के नावलों का ज़िक्र करते हुए जो हाथों-हाथ बिकने पे प्रेमचन्द लिखते हैं— हर कस्बे नाक़िस ने नावल लिखना शुरू किया। स्कूल और कॉलिज के तुलबा और मामूली लियाक़त के लोग, जिन्हें सौ पचास अशआर याद हो गए उनमें सफ़र कर गए और सभी बाँधना शुरू कर दिया। कई-कई अर्से तक कमर पर भी कलाम के कोई बाज़ारी हुस्न या इश्क का किस्सा छेड़ दिया। शरर और सरशार के सिवा क़रीब-क़रीब सभी ने यही तर्ज़ अख्तियार किया। आख़िर नावलों की इतनी कसरत हो गई कि पढ़ने वाले तंग आ गए। इसने नावलों का बाज़ार सर्द हो गया। हज़रत शरर ने किस्से लिखना बंद कर दिया। मुहम्मद अली साहब ने फ़िसाना निगारी को ख़ैरबाद कहा। आज कोई मुसन्निफ़ ऐसा नहीं है जिसे हम गुरुनियन से नावलिस्ट कह सकें।

गुजरात और बंगाल में नावलों की क़दर रोज़-ब-रोज़ ज़्यादा होती जाती है। मगर उर्दू (जिस ज़बान के नावलख्वाँ करोड़ों में हैं) का कैफ़ियत इसके बिलकुल बरअक्स है। आज शरर के नावल बहुत कम पढ़ जाते हैं। रेनाल्ड के दरम्यान की तरफ़ बहुत कम किसी की निगाह पड़ती है। फ़िसाना-ए आज़ाद

की भी आज इतनी कदर नहीं है जितनी आज से कई साल पहले थी इसलिए जरूरी मालूम होता है कि सस्ते बाजारी व वाहियात असबाब से किनाराकश करके मानवी असबाब ढूंढने की कोशिश की जाए '

अफसाना उसी तबके की तादाद दो बड़े हिस्सों में मुनकसिम की जा सकती है। एक आमियाना मजाक वाले और दूसरे संजीदा मजाक वाले। उर्दू नावल इन दोनों को मायूस करता है उर्दू का खास डिक्स मौजूद है मगर उर्दू का सबसे खास रीडर यानी कारेमी आज इस्लिमट अभी वजूद में नहीं आया उर्दू नावल नवीसी अब तक वजूद मरकार के तकरीबन सब मुसलमान थे। और उन्होंने अपनी किताबों में इस हिन्दू जज़्बा की मुतलिक परवाह न की जो मुसलमान हीरो और हिन्दू हीरोइन के ताल्लुक में पैदा होता है नावलों की इस कमाश बाजारी का खात्मा करने के लिए हम तैयार हो जाते मगर इसका असर हमारी नावल नवीसी के मयार को ऊँचा कर देता अगर किसाना नगार सवाए इसानों के सच्चे नमूने पेश करने लगे। बदकिस्मती से इसका असर नावलों को मुल्क अदम की तरफ ले जा रहा है। १९ ९ के उर्दू मतबूआत की फेहरिस्त देखने से मालूम होता है कि इस सवा में सिर्फ दो नावल शाया हुए। जरूरी मालूम होता है कि उर्दू जबान के शौकीन और मुआवनीन इस ख्याल को दूर करने की कोशिश करें कि नावल पढ़ना सब्र महज और तसनीह औकात है अदबी दुनिया में किस्सा का वही रुतबा है जो किसी महफिल में सदरे मजलिस का। किसी जबान का अदब ले लीजिए अफसाना का रंग गालिब आएगा

गुजराती बंगाली के नावलों का हवाला देते हुए और आन लक की उस किताब का जिसमें उन्होंने सौ सर्वोत्तम पुस्तकों का वर्णन किया है हवाला देते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं कि केवल अमीर लोग ही तारीख राजनीति फल सफा इतिहास हिसाब का अध्ययन कर सकते हैं मगर आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा वही है जिसे चौबीस घण्टों में से बारह घण्टे फिक्रे मुआश की नजर करने पड़ते हैं। ये गरीब या तो नावल पढ़ सकते हैं या कुछ भी नहीं पढ़ सकते

लेख का अन्तिम भाग इस प्रकार है— नावल नवीसों को भी ख्याल रखना चाहिए कि उर्दू नावल का मुस्तकबिल उसके हाथ में है। उन्हें उस्तादाने फन की तसानीफ का गौर करना चाहिए। उनका फर्ज है कि तबा इंसानी का नजर गायर से मुताला करें और सच्चे जज़्बात के नमूने पेश करें। पब्लिक का अदबी मयार रोज-बरोज ऊँचा होता जाता है और अंग्रेजी तालीमयाफ्ता लोग अपनी जबान में भी वही खूबियाँ देखने को मतलाशी हैं जिनकी उनकी निगाह हो

रही है। बन्गिला में जिद्दत खयालात में ताजगी जजबात में अमक अच्छे नावेल के जरूरी लवाजम है। बंगला जबान के नावलों का मुतालिया उनके लिए बहुत सबसे मामोज साबित होगा। नावल लिखना आसान काम नहीं। शायद किसी मंफे अन्य में इस कदर जब्र खयाल। इस कदर दिमागी इनहमाक और इस कदर तसव्वुफ की जरूरत नहीं होती। उन्हें रातें खयाल में डूबकर काटनी होगी। उन्हें सुबह शाम तनहापुर फिजा मकामात की सैर करनी होगी। उन्हें इल्लाजा कदीम के कलाम की खुशाचीनी करनी होगी। तब कहीं उनके कलम से पुरजोर नावल निकलेगा। अब वह जमाना नहीं रहा जब पब्लिक बेसिलाना कहानियों से मामूल हो जाती थी। पब्लिक का नुक्ता निगाह अब पुख्ता होता जाता है। हमारे नावल नवीस अगर जिन्दा रहना चाहते हैं तो उन्हें जमाना के साथ कदम बढ़ाना चाहिए।

उर्दू उपन्यास की १९१० की परिस्थिति तथा प्रेमचन्द की (नावल के बारे में) राय का जिक्र कर हम प्रेमचन्द के अगले उपन्यास 'जलवा-ए-ईसार' का परिचय देते हैं। उस लेख के छपने के समय तो प्रेमचन्द ने अपना नया उपन्यास लिखना आरम्भ कर दिया था। इसमें राजस्थान या अन्य इतिहास की कोई झलक तो नहीं मिलती, परन्तु यह उपन्यास १९१२ में इंडियन प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ और इस पर लेखक का नाम 'नवाबराय' ही छपा। सम्भव है इसका उन्होंने स्वयं इंडियन प्रेस के मैनेजर को लिया हो और 'नवाबराय' के नाम पर प्रतिबन्ध लगने का जिक्र न किया हो। बहरहाल यह उपन्यास नवाबराय के नाम से छपी हुई आखिरी कृति है।

इस उपन्यास (जलवा-ए-ईसार) में प्रारम्भ में ही सुवामा देवी से वर मांगती है कि वह उसे एक सपूत बेटा दे। सपूत कौन होता है?

'जो कुल का नाम रोशन करे?'

'नहीं।'

१ प्रेमचन्द के पुत्र अमृतराय ने लिखा है कि उन्हें जहां तक मालूम हुआ है प्रेमचन्द का पहला उपन्यास 'हम्मा' था जिसका उन्होंने ... [illegible] ... के अन्तर्गत में शुरू करना चाहा है। शिवरानी देवी ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द' में लिखा है कि प्रेमचन्द का पहला उपन्यास ... था। अथवा ... [illegible] है। इसी लेख में हम ... [illegible] ... लिखा है। ... सम्भव है कि प्रेमचन्द ने, जैसा उन्होंने लिखा है इस उपन्यास का ... [illegible] ... ११ में इसी के ... [illegible] 'जलवा-ए-ईसार' के नाम से ... [illegible] ... प्रेमचन्द ... [illegible] ... [illegible]।

जो माँ बाप की सेवा करे ?

नहीं।

जो विद्यावान हो और बलवान हो।

नहीं।

फिर सपूत बेटा किसे कहते हैं ?

जो अपने देश का उपकार करे।

प्रतापचन्द की माँ पति की मौत के बाद पुत्र को गरीबी में पालती है। पुत्र का उसी घर में रहने वाली एक लड़की ब्रजरानी से प्रेम हो जाता है परन्तु ब्रजरानी का विवाह एक बाइज़्ज़त घर के निखट्टू लड़के से हो जाता है। ब्रजरानी का पति एक हादसे में मर जाता है। प्रतापचन्द संन्यासी बन जाता है। देश के उपकार कार्य में इस लगन से लग जाता है कि उसकी धूम मच जाती है। ब्रजरानी बालाजी (प्रतापचन्द) की प्रशंसा और सम्मान देखकर बहुत प्रसन्न होती है और कविता लिखती है।

आज पचास बरस बाद 'जलवा ए ईसार' को किसी भी दृष्टि से उत्तम उपन्यास नहीं कह सकते परन्तु १९१२ में जब यह प्रकाशित हुआ था उस समय यह उपन्यास सारी कमज़ोरियों के बावजूद एक नई चीज़ था। अदीब (मार्च १९१३) ने इसे मुंशी नवाबराय का ओरिजिनल और अछूता नावल बतलाया और कहा कि आपकी तसनीफ़ात हम खुर्मा ओ हम सवाब सोज़ेवतन किस्सा वगैरा इससे पेशतर मुल्क में इतनी शोहरत हासिल कर चुकी है कि ज़रूरत नहीं कि आपकी निस्बत कुछ और लिखा जाए।

ज़माना की आलोचना अदीब की आलोचना से थोड़ी भिन्न है। इसमें आलोचक ने जो लेखक का नाम गलती से नवाबराय की जगह नौबतराय लिखा है (नौबतराय के नाम के भी एक और लेखक ज़माना में लिखते थे) नवाबराय की नई पुस्तक की धज्जियाँ उड़ाईं मगर एक इतनी महत्वपूर्ण बात लिखी कि हम आलोचना का एक अंश उद्धृत करते हैं। 'मुंशी नवाबराय साहब मुसन्निफ़ *सोज़ेवतन किस्सा वगैरा का यह पुरलुत्फ़ नावल बहुत-सी* अख़लाकी व मुआशरती इस्लाहों का गुंजीना है जो इंडियन प्रेस इलाहाबाद में छापा हुआ है। हुस्न ओ इश्क़ की चाशनी के साथ साथ इसमें ईसार नफ़्स और हुब्बुलवतनी का जज़्बा भी मौजूद है। और दरहक़ीक़त नावल का माहसल भी यही है। पहले ही सीन में सुवामा देवी से एक सपूत बेटा माँगती है जो अपने देश का उपकार करे। एक आलिम औरत की यह इस्तदा किस क़दर मुबारिक है जिसकी ख़ुद देवीजी ने दाद दी है।

प्रतापचन्द्र नावेल का हीरो है जो सुवामा की ख्वाहिश के मुताबिक सपूत निकला। विरजन को इस दास्तान की हीरोइन कह सकते हैं जिसने बावजूद एक दूसरे शख्स के साथ शादी होने के भी प्रताप की उस मुहब्बत का हक़ अदा किया जो दोनों में बचपन से पैदा हो गई थी। नावेल का यह हिस्सा बहुत दिलचस्प है और पाक मुहब्बत के जज़बात एक खास दिलकशी रखते हैं। लायक अफसाना नवीस ने अलफ़ाज़ की सहरतराज़ी से सारी दास्तान को दिलकश बनाया है। लेकिन प्रताप के देश उपकार की दास्तान इस कदर मुख्तसिर है कि दो सौ बत्तीस सफ़हात की हजाम किताब में इसका इन्तज़ाम होना सकता है। ऐसा मालूम होता है कि मुसन्निफ ने अपने नावेल के इब्तदाई अबवाब कायम करने ही में सारा ज़ोर तबीयत खत्म कर दिया और आखिर में खासकर प्रतापचन्द्र के देश उपकार के कारनामों को सरसरी तौर पर इस कदर बयान करके नाज़रीन को टाल दिया कि उन्होंने गोपाल और अर्जुन सभाएँ कायम कीं। महज़ इन उपकारी कारगुज़ारियाँ ज़्यादा तफ़सील चाहती थीं जिनका इख्तसार इस नावेल की बहुत-सी खूबियों को ज़ाहिर नहीं होने देता। विरजन बहुत जल्दी बेवा हो गई थी। और वह प्रताप की मुहब्बत में सरसरी तौर पर सरशार रही। लेकिन आखिर में माधुरी भी एक उम्दा करेक्टर है जो प्रताप के रंग में सरशार होकर जोगन हो गई और उम्र भर एक मतवाली जोगन की हैसियत से दरबदर की खाक छानती रही। अफसोस कि देश उपकार की तरह यह दास्तान भी निहायत मुख्तसिर है जिससे किस्से का मज़ा किरकिरा हो जाता है।

माधुरी के इश्क में एक और नुक्स भी नज़र आता है। यानी वह ब्राह्मणी थी और प्रताप ग़ालिबन कायस्थ था क्योंकि उसके वालिद का नाम मुन्शी शालिगराम बताया गया है जो साधुओं और ब्राह्मणों के बड़े मुअतक़िद थे। इस सूरत में माधुरी को शादी करने का ख्याल ही क्या पैदा हुआ? मगर विरजन की तालीम ने उसे ज़्यादा रोशन ख्याल बना दिया था और मुसन्निफ को अगर इन्टरमैरिज के मसले पर रोशनी डालनी थी तो बेहतर होता कि दोनों का ब्याह करा दिया जाता। मगर बावजूद इसके उम्र तारिकुद्दुनिया रहे और साधुओं की तरह ज़िन्दगी बसर करते रहे जिससे इस मसले की ताईद नहीं होती। यकीनन काबिल मुसन्निफ का यह इरशाद काबिले दाद बना रहा है कि एक दिन वह उम्दा नावेलिस्ट होंगे क्योंकि इन नकायस पर नज़र करने पर भी 'जलवा-ए-ईसार' उर्दू ज़बान की बेहतरीन तसानीफ़ में शुमार होने के काबिल है।

जलवा ए ईसार १६१२ म एक नई चीज था। देश प्रेम स्वाभिमान दलोपकार इत्यादि इन सब रसो से भरपूर है। फिरंगी शासन पुलिस की क्रूरता तथा हिंदी भाषा के बारे म भी इधर-उधर जिक्र है।

एक समालोचक[१] के मतानुसार बालाजी (प्रतापचन्द) का करेक्टर विवेकानन्द के साँचे म ढला है। जसा कि हम पहले कह चुके है 'जमाना' के मई १६ ८ अक म प्रेमचन्द (नवाबराय) का विवेकानन्द पर एक लेख छपा था।

जलवा-ए ईसार की भाषा हमखुमा ओ हमसवाब तथा मोजवतन से भिन्न है। फारसी के शब्दो की जगह प्रचलित हिन्दी या संस्कृत के शब्दो का अधिक प्रयोग हुआ है। इसका एक कारण तो प्रेमचन्द पर आर्यसमाज का प्रभाव था। बस ता हमखर्मा ओ हमसवाब का पहला दृश्य भी आयसमाज मन्दिर म एक लक्चर स सम्बन्धित है। घनश्यामलाल प्रमचन्द के प्रवक्ता ही हैं। परन्तु महोबा के कयाम (१६१ १४) म प्रमचन्द आयसमाज के और भी निकट आ गए। महोबा तथा निकट के क्षत्रो मे ईसाई पादरी गरीब लोगो को बडी तजी स ईसाई बना रह थ। इसको रोकन के लिए आयसमाज न भी अपने प्रचारको को वहाँ भेजा। १६१२ के मध्य म एक प्रचारक (मौलवी आलिम फाजिल) महाप्रसाद तथा उनके दो साथी महोबा पहुँच और प्रमचन्द के घर पर ही ठहरे। उन्होन लिखा हम तीनो का सत्कार उन्होन निरन्तर सात-आठ रोज तक जिस प्रेम व नम्रता क साथ किया उसको हम कभी नही भूल सकते। प्रमचन्द तथा तीनो प्रचारक साथ हो भोजन करत और विविध विषयो पर बातचीत भी करत। विषय थ—(१) महोबा से सम्बन्ध रखन वाली एतिहासिक बात (२) ईसाई पादरियो का महोबा ही नही हमीरपुर जिले म काम—प्रमचन्द के अनुसार यह हमारी सामाजिक त्रुटियो का ही फल है कि महोबा अथवा बुन्देलखण्ड के स्थानो म हिन्दुओं के अनेक लडकी लडके ईसाइयो के घरों म पहुँच जात है। (३) आयसमाज और उसके काय-सम्बन्धी बातें।

अपनी कहानी खून सफेद म प्रमचन्द ने दिखलाया है कि जब ईसाई पादरी एक गरीब किसान के लडके को लालच देकर ईसाई बना लत हैं तो उनके बीच मे रहकर उसम कितना परिवतन आ जाता है। परिवतन उस ही मे नही उसके गाँव वालो म भी आ जाता है क्योंकि जब वह वापस लौटता है तो गाँव वाले उसस छुआछूत करते हैं जसे उसका खून ही सफेद हो गया हो।

---

१ डा कमर रहस।

१०

पत्रकार बनने की इच्छा

सोज़ेवतन के बारे में हुई कार्रवाई से प्रेमचन्द बड़े क्षुब्ध थे। अंग्रेज़ों के विरुद्ध उन्हें घृणा-सी हो गई थी। एक बार जब निगम ने कुछ अंग्रेज़ हाकिमों को एक लड़की की शादी के अवसर पर अपने घर बुलाया तो प्रेमचन्द ने निगम को लिखा कि आपने अंग्रेज़ हुक्काम की दावत नाहक की। आखिर इससे क्या फायदा समझा? निगम स्वयं लिखते हैं— जहाँ तक मैं समझता हूँ यह खयाल उनके दिल में नक्श हो गया था कि जब अंग्रेज़ हम हिन्दुस्तानियों से बिलकुल अलग-अलग रहते हैं तो हम लोगों को भी उनसे दूर ही रहना चाहिए। कौमी खुद्दारी के यह बड़े हामी थे और अक्सर किसी के इकतदाई ज़माने में सरकारी अफ़सरान ने उनके साथ जो नामुसिफ़ाना बरताव किया उसका असर उनके दिल से कभी ज़ाइल नहीं हुआ। सोज़ेवतन के मुतअल्लिक हुक्काम की कार्रवाई सरासर बेजा थी क्योंकि उसका कोई किस्सा ऐसा न था जिस पर उनके खिलाफ कोई क़ानूनी कार्रवाई की जा सकता।

प्रेमचन्द सरकारी नौकरी छोड़कर किसी अख़बार में काम करने की बात सोचते थे। एक बार निगम के अवध अख़बार के स्टाफ़ में जाने की बातचीत चली। निगम ने प्रेमचन्द को बतलाया और उनसे पूछा। प्रेमचन्द का उत्तर मिला—

अवध अख़बार वाले मुआमले (में) क्या जवाब दूँ? मुश्किल यह है कि यहाँ नेचर मामूली पेशा में किसी तरह आदी नहीं है। दौरे का गश्त और मुलाज़िमत की मसरूफ़ियत नाक़ाबिल नहीं है। क़रीब-क़रीब यही हालत वहाँ भी थी। और ज़्यादा मुश्किल। मगर काम में बड़ा फ़र्क़ है। यहाँ (अब इस्कूलों इंस्पेक्टरी में) बहुत फ़ायदा है। बावजूद गुलामी के सेल्फ़-रेस्पेक्ट सर पर नहीं रहता और न कोई ज़िम्मेदारी है। इसलिए आज़ादी-सी मालूम होती है। इस वक़्त मैं चार बजे की हाज़िरी दिमाग़ी काम रोज़ाना अख़बार जो दौर आता है। हिम्मत नहीं पड़ता। यहाँ दिल्लगी काम कमज़ोरी-ख़ुश है। वहाँ यह

जलवा-ए-ईसार १९१२ में एक नई चीज़ था। देश-प्रेम स्वाभिमान दलोपकार इत्यादि इन सब रसों से भरपूर है। फ़िरंगी शासन पुलिस की क्रूरता तथा हिन्दी भाषा के बारे में भी इधर उधर ज़िक्र है।

एक समालोचक[1] के मतानुसार बालाजी (प्रतापचन्द) का करेक्टर विवेकानन्द के साँचे में ढला है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं ज़माना के मई १९०८ अंक में प्रेमचन्द (नवाबराय) का विवेकानन्द पर एक लेख छपा था।

जलवा-ए-ईसार की भाषा हमख़ुर्मा-ओ-हमसवाब तथा माद्रेवतन से भिन्न है। फ़ारसी के शब्दों की जगह प्रचलित हिन्दी या संस्कृत के शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। इसका एक कारण तो प्रेमचन्द पर आर्यसमाज का प्रभाव था। वैसे तो हमख़ुर्मा-ओ-हमसवाब का पहला दृश्य भी आर्यसमाज मन्दिर में एक लेक्चर से सम्बन्धित है। धनपतराय/नवाबराय/प्रेमचन्द के प्रवक्ता ही हैं। परन्तु महोबा के क़याम (१९१ -१४) में प्रेमचन्द आर्यसमाज के और भी निकट आ गए। महोबा तथा निकट के क़स्बों में ईसाई पादरी ग़रीब लोगों को बड़ी तेज़ी से ईसाई बना रहे थे। इसको रोकने के लिए आर्यसमाज ने भी अपने प्रचारकों को वहाँ भेजा। १९१२ के मध्य में एक प्रचारक (मौलवी आलिम फ़ाज़िल) महेन्द्रप्रसाद तथा उनके दो साथी महोबा पहुँचे और प्रेमचन्द के घर पर ही ठहरे। उन्होंने लिखा "हम तीनों का सत्कार उन्होंने निरन्तर सात आठ रोज़ तक जिस प्रेम व नम्रता के साथ किया उसको हम कभी नहीं भूल सकते। प्रेमचन्द तथा तीनों प्रचारक साथ ही भोजन करते और विविध विषयों पर बातचीत भी करते। विषय थे—(१) महोबा से सम्बन्ध रखने वाली ऐतिहासिक बातें (२) ईसाई पादरियों का महोबा ही नहीं हमीरपुर ज़िले में काम—प्रेमचन्द के अनुसार यह हमारी सामाजिक त्रुटियों का ही फल है कि महोबा अथवा बुंदेलखण्ड के स्थानों में हिन्दुओं के अनेक लड़की-लड़के ईसाइयों के घरों में पहुँच जाते हैं। (३) आर्यसमाज और उसके कार्य-सम्बन्धी बातें।

अपनी कहानी ख़ूने सफ़ेद में प्रेमचन्द ने दिखलाया है कि जब ईसाई पादरी एक ग़रीब किसान के लड़के को लालच देकर ईसाई बना लेते हैं तो उनके बीच में रहकर उसमें कितना परिवर्तन आ जाता है। परिवर्तन उस ही में नहीं उसके गाँव वालों में भी आ जाता है क्योंकि जब वह वापस लौटता है तो गाँव वाले उससे छुआछूत करते हैं जैसे उसका ख़ून ही सफ़ेद हो गया हो।

---

[1] डॉ. क़मर रईस।

पत्रकार बनने की इच्छा

सोज़वतन के बारे में हुई कारवाई से प्रेमचन्द बड़े क्षुब्ध थे। अंग्रेजों के विरुद्ध उन्हें जैसे घृणा-सी हो गई थी। एक बार जब निगम ने कुछ अंग्रेज हाकिमों को एक लड़की की शादी के अवसर पर अपने घर बुलाया तो प्रेमचन्द ने निगम को लिखा कि आपने अंग्रेज हुक्काम की दावत नाहक की। आखिर इससे क्या फ़ायदा समझा? निगम स्वयं लिखते हैं— जहाँ तक मैं समझता हूँ यह खयाल उनके ज़हन नशीन हो गया था कि जब अंग्रेज हम हिन्दुस्तानियों से बिलकुल अलग-अलग रहते हैं तो हम लोगों को भी उनसे दूर ही रहना चाहिए। क़ौमी खुद्दारी के वह बड़े हामी थे और सच्ची ज़िन्दगी के इब्तदाई ज़माने में सरकारी अफ़सरान ने उनके साथ जो नामुनासिब बरताव किया उसका असर उनके दिल से कभी ज़ाइल नहीं हुआ। सोज़वतन के मुतअल्लिक़ हुक्काम की कारवाई सरासर बेजा थी क्योंकि उसका कोई किस्सा ऐसा न था जिस पर उनके खिलाफ़ कोई क़ानूनी कारवाई की जा सकती।

प्रेमचन्द सरकारी नौकरी छोड़कर किसी अखबार में काम करने की बात सोचते थे। एक बार निगम के अवध अख़बार के स्टाफ़ में जाने की बातचीत चली। निगम ने प्रेमचन्द को बतलाया और उनसे पूछा। प्रेमचन्द का उत्तर सुनिए—

अवध अख़बार वाले मुआमले (में) क्या जवाब दूँ? अव्वल तो यह है कि यहाँ नए मामूली मसला में किसी तरह जाहिर नहीं है। गोरे का राज और मुलाज़िमों की तनख्वाह इसमें शामिल नहीं है। क़रीब क़रीब यही हालत वहाँ भी थी। और मसारिफ़ अलावा। मगर काम में बड़ा फ़र्क है। यहाँ (सब इम्पुरी दफ़्तरों में) बहुत आराम है बावजूद गुमनामी के। पुश्तकार्ड अफ़सर सर पर नहीं रहता और न कोई जवाबदेही है। इसलिए आराम-सी मालूम होती है। दस बजे से पाँच बजे की हाज़िरी दिमाग़ी काम रोज़ाना अख़बार जी हाँ जाना है। हिम्मत नहीं पड़ती। यहाँ दिफ़्तरी काम कमज़ोर-व-नपरीद है। वहाँ यह

समाप्त हो जाएगा हालाँकि छत्र की पछाड़ और आइन्दा ज़िन्दगी की रफ़्तार के ख़याल से यह मौक़ा बुरा नहीं है मगर काम की कसरत इरादा को मुस्तक़िल नहीं होने देती। बहरहाल मैं अभी दुविधा में हूँ। अगर मौक़ा मिले तो आप प्रोप्राइटर से ज़िक्र कीजिएगा। उस वक़्त तक शायद ख़याल किसी तरफ़ जम जाए।

इसी पत्र में लिखते हैं— मेरे किस्सों के मजमुए का ख़याल रखिएगा और जब आप अवध अख़बार में पहुँच जाएँ उस वक़्त इसे निकालने की फ़िक्र करना मुनासिब होगा। मुमकिन है आपका अवध अख़बार में पहुँचना मेरे लिए कोई बेहतरी की सूरत पैदा करे। क्या ज़रूरत है कि मैं अपना ख़ून जिगर (या उँगलियों से निकलने वाले क़तरा ए ख़ून) को किसी ग़ैर जगह फेंकूँ। अगर अपने घर में क़द्र हो तो क्या दूसरे का एहसानमन्द होऊँ? हालाँकि मैंने हमदम को कोई अच्छा क़िस्सा नहीं दिया ताहम अगर उनके लिए और कोई गुंजाइश होती तो मैं वहाँ न देता। हाँ ख़सारा न होना चाहिए। आपके पास ईश्वर ने चाहा तो परसों क़िस्सा पहुँचेगा इसी पत्र में आपने मेरी तनख़्वाह बढ़ा दी। इसका मशकूर हूँ क्योंकि यह प्राइवेट ट्यूशन है। अब मुझे आठ रुपये माहवार मिलेंगे।

'ज़माना' में तो प्रेमचन्द को शुरू ही से दिलचस्पी थी। वह चाहते थे कि यह मासिक एक इतनी अहम पत्रिका बन जाए कि उसका ख़ूब नाम हो। मेरी दोस्ताना सलाह यह है कि आप माडर्न रिव्यू की जगह अदीब को लेन दीजिए और ख़ुद हिन्दुस्तान रिव्यू की जगह लीजिए। निगम चाहते थे कि अदीब की तरह 'ज़माना' में भी तसवीरें हों। प्रेमचन्द ने लिखा— अपनी हार मान लेने में बुराई नहीं है। आप इंडियन प्रेस के वसाइल कहाँ से लाएँगे ज़माना की ख़ूबी मज़ामीन पर होना चाहिए तसावीर पर नहीं तसावीर की किफ़ायत काग़ज़ और छपाई की इसलाह में सर्फ़ कीजिए और मौजूदा मसाइल पर मज़ामीन लिखाने की फ़िक्र कीजिए। यामू के बिल पर कोई मज़मून न निकला गोखले के बिल ने कहाँ तक तरक़्क़ी की मुहम्मडन यूनिवर्सिटी की कान्स्टीट्यूशन कमेटी के मसले पर कुछ होना चाहिए था। मतलब यह है कि 'ज़माना' अपटुडेट पालिटिकल पेपर हो। जौक़ पर आधा परचा भरना मैं अच्छा नहीं समझता। हम ज़ौक़ का रोना रोने से क्या मिल जाता है? ज़ौक़ के नाम पर रोने वाले बहुत हैं। यह काम अदीब को करने दीजिए और आप इससे बेहतर काम में मसरूफ़ हो जाइए।

जब १६१२ में दयानारायण निगम ने 'ज़माना' मासिक के अलावा एक उर्दू साप्ताहिक और आगे चलकर दैनिक भी निकालने का फ़ैसला किया तो प्रेमचन्द ने निगम को लिखा कि हफ़्तावार कायम करने के पहले वह होना

चाहिए मगर पालिसी हिंदू। अब मेरा हिन्दुस्तानी कौम पर एतकाद नहीं रहा और उसकी कोशिश फिजूल है।' प्रेमचन्द ने साप्ताहिक का नाम भी हिंदू रखने को कहा था। क्योंकि 'हिन्दू' नाम का कोई पर्चा पंजाब से निकलने लगा था इसलिए दूसरा नाम 'रफ्तारे जमाना' तजवीज हुआ।

आपने भी तो यही नाम पसन्द किया था। नाम तो यही रखिए मुझे यकीन है कि एक हिंदू पर्चा जिसका अच्छा कागज हो अच्छी छपाई हो उसके लिए काफी गुंजाइश है। हमारी यही कोशिश होगी कि उर्दू परचों में 'रफ्तारे जमाना' एक ताकत हो जाए। उसकी राय को दूसरे अखबार इक्तबास करें।

प्रेमचन्द निगम की सहायता करने को तत्पर थे। आप तनहा एक असिस्टेंट की मदद से हफ्तावार अखबार इसी हालत में चला सकेंगे, अब कलम को रवाना क्यों बनाएँ। मैं हफ्तावार एक दो सफे बिला-नागा आपकी खिदमत में भेज दिया करूँगा कुछ नोट होंगे बन पड़ा तो कोई एडीटोरियल कभी किसी मजमून का तर्जुमा कभी कुछ। ईश्वर का नाम लेकर शुरू कीजिए। मुझसे जो मदद हो सकेगी करता रहूँगा। फिलहाल मेरी हालत मुझे इजाजत नहीं देती कि कुछ ईसार कर सकूँ। यकीन मानिए, आपसे बमिस्दके मिस्ल कहता हूँ कि जब से यहाँ आया हूँ, सिर्फ दो सौ रुपये मेरे पास जमा हुए हैं। और वह भी सौ रुपये नावल का मुआवजा है और सौ रुपये में कोई तीस रुपये इंडियन प्रेस से मिले। शायद तीस या पैंतीस रुपये आपने दिए और इसी कद्र 'एजूकेशनल गजट' से मिला। मेरी तनख्वाह और भत्ते में कौड़ी की बचत नहीं हुई। हाँ, बचत कहिए तो कमाई कहिए तो बीबीजान की बरसों की जिद पर रफा निशायत के लिए एक कड़ा बनवाया जिसका गम्मा अब तक न भूला। इस बिरते पर मैं क्या ईसार करूँ? साठ रुपये तनख्वाह है चालीस रुपये का अौसत। और नहीं मालूम यहाँ कानपुर के मुकाबले क्या खर्च बढ़ गया है। वहाँ चालीस रुपये में गुजर हो जाती थी यहाँ उसके दुगुने में रोना पड़ा हुआ है और बढ़ हुए अखराजात का बोझना मुझ पर तो नहीं दूसरा पर सितम होगा और छः माह अखबार की हालत देखकर बाद को फैसला कर सकूँगा कि मेरे लिए कौन-सा रास्ता ज्यादा सीधा है। यहाँ से इस्तीफा लेकर चला आऊँगा और जिस कदर मेहनत और कोशिश दरकार होगी उसमें दरेग न करूँगा। क्या मुमकिन है मैं अखबार को चला सकूँ! अगर छः माह के बाद अखबार कुछ न निकला, तो मैं हाथ-पैर न मारूँगा वरना अपना सा मुँह लेकर अपने पुराने घरे पर चलूँगा। मगर साठ रुपये से कम पर मेरा गुजारा नहीं हो सकता। यह मामला आपको अपना दोस्त हमदम और भाई समझकर कहता हूँ। मैं

काम से जी नहीं चुराता। न इस क़द्र मुतालिबा चाहता हूँ गोया मैं कहीं का बड़ा मुंशी-ए बिकार हूँ। नहीं सिर्फ़ गुज़ारा चाहता हूँ और गुज़ारा साठ रुपये से कम में नहीं हो सकता। दूसरी बात आपने ज़माना अब तक निज के तौर पर चलाया है। इसका खर्च और आपका जेब-खर्च दोनों एक ही मद में शुमार होते रहे जिसकी वजह से अक्सर परेशान होते रहे। आपने अपना जाती खर्च बहुत बढ़ा लिया है। साफ़गोई के लिए मुआफ़ फ़रमाइयेगा। रफ़्तारे-ज़माना का मुआमला निज का मुआमला न होगा। इसका हिसाब किताब और खर्च सबका सब आपके जेब-खर्च से बिलकुल अलग होगा। इन्हीं उसूलों पर काम चल सकता है अखराजात की तफ़सील जो आपने दी है वह मैं पहले भी देख चुका हूँ। बहरहाल मैं काम करने के लिए तैयार हूँ ऊपर लिखी हुई शर्तों पर और उस हालत में जबकि माली हालत मुश्किल हो। और मैं किराये का टट्टू बनकर काम न करूँगा बल्कि सच्चे जोश से। या तो आप अभी मेरी ख़िदमत तलब करें या जब अख़बार की हालत कुछ मालूम हो तब।

इसी प्रकार कई बार बातचीत और ख़तो किताबत भी हुई। १२ सितम्बर, १९१२ को साप्ताहिक आज़ाद निकला। फिर इसे दैनिक बनाने का विचार हुआ। एक बार छुट्टियों में प्रेमचन्द कानपुर गये। उनका ख़याल था कुछ फ़ैसला हो सकेगा पर वहाँ इस बारे में कोई बात न हुई। छुट्टियाँ ख़त्म होने पर प्रेमचन्द अपनी नौकरी पर वापस लौट आए। निगम ने बुरा मनाया। जली भुनी लिखी। प्रेमचन्द का उत्तर सुनिए—

इताब नामा जिसे आपका इनायतनामा कहना चाहिए वसूल हुआ। कई दिन हो गए। सोचता रहा किन लफ़्ज़ों में जवाब दूँ। कैसे गुस्सा ठंडा करूँ। कुछ अक़्ल ने काम न किया। न शेर-ओ-शायरी से मस है कि दो चार बढ़िया शेर चस्पाँ कर दूँ। बिल आख़िर दिल ने यही फ़ैसला किया कि तुम ख़तावार हो मिज़ाज यार में जो कुछ आए कहने दो और ज़बान बन्द किए सुने जाओ। यह कहना कि मैं बेख़ता हूँ ग़ालिबन आपके नज़दीक कोई मानी नहीं रखता क्योंकि आपको ग़ुरूर है कि आपके चन्द अज़ीज भी मुलाज़िमे सरकार हैं और आप क्वाइद से वाक़िफ़ हैं। मगर मुआफ़ कीजिएगा अगर मैं अर्ज़ करूँ कि आपने अपनी उम्र या उसके बेशतर हिस्सा मेरी तरह सरकारी मुलाज़मत में सर्फ़ किया होता तो आप इतनी बेवफ़ाई से यह अलफ़ाज़ न लिखते। मैंने रुख़सत लेने में कोई दक़ीक़ा नहीं छोड़ा। दो दरख़्वास्तें भी तार दिया। दरख़्वास्तें दोनों बाद अज़ वक़्त भी गई और दोनों मेरे पास रखी हुई हैं। बेशक मैंने मेडिकल सर्टिफ़िकेट देने की कोशिश नहीं की लेकिन मुझे

वहाँ इसके मिलने की उम्मीद भी न थी। यह इलज़ाम कि दरख्वास्तें कभी बाद में वक़्त दी गई मेरे सर ज़्यादा-से-ज़्यादा दस से है, क्योंकि मैंने पहले हफ़्ता ए क़याम कानपुर में तो आपसे रोज़ाना अख़बार का कोई डायरेक्ट तज़किरा नहीं किया। ज़िक्र किया तब जब मेरी रुख़सत ख़त्म होने को आई और फ़ैसला उस वक़्त हुआ जब कुल तीन दिन रह गए। ऐसी हालत में मेरे जैसा कमज़ोर का आदमी बजुज़ इसके और क्या कर सकता था कि रुख़सत लेने की कोशिश बतौर इमकान करे और न मिल सके तो मजबूरन व लाचारन अपनी नौकरी पर वापस आए। आप ही फ़रमाइये मुझे क्या ग़रज़ पड़ी थी क्या दबाव था कि मैं पहले काम शुरू करता और तब भाग खड़ा होता। आपने मेरा गला नहीं दबाया था और न दबा सकते थे। आपने मुझे किसी सेक्रिफ़ाइस करने पर मजबूर नहीं किया, न मैंने कोई सेक्रिफ़ाइस की। मेरा माली फ़ायदा था। फिर ऐसा कौन सबब था, जो मेरी बेदिली का बाइस होता। हमीरपुर में मैं ऐसे वक़्त पहुँचा जब मेरी रुख़सत तमाम होने में सिर्फ़ चौबीस घंटे की देर थी। १४ सितम्बर की शाम को तमाम होने वाली थी। मैं १३ की शाम को चला और इतवार का दिन। डिप्टी इन्सपेक्टर दौरे पर। ग़रज़ हमीरपुर में ऐसा कोई शख़्स न था जिससे मैं कुछ सलाह-मशवरा ले सकता क्योंकि हमीरपुर में मेरे जानने वाले गिनती के आदमी भी नहीं हैं। वहाँ जाना और चार्ज लेने में तब भी एक दिन की देर हो गई, जिसका जवाब मुझको देना पड़ा। यह है मेरा बयाने हल्फ़ी।

अब दूसरे पहलू पर नज़र कीजिए। आपको मेरे भाग निकलने पर नाराज़ होने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि जैसा अख़बार आप चाहते हैं वह कम तनख़्वाह और सरफ़ा में निकल सकता है और निकल रहा है। मालूम नहीं इसकी इशाअत क्या है लेकिन मुझे यक़ीन है कि इसकी बाइज़्ज़त हैसियत क़ायम है। एक मामूली तेज़ और मामूली लियाक़त का आदमी ऐसा अख़बार निकाल सकता है जिसमें बहुत-सा ओरिजिनल न लिखना पड़े। मालूम नहीं आपने रोज़ाना आज़ाद का क्या इन्तज़ाम किया। न मुझे पूछने का कोई हक़ हासिल है। लेकिन ग़ालिबन अब तक कोई-न-कोई इन्तज़ाम ज़रूर हो गया होगा। और १८ अक्तूबर से तो उसकी निगरानी के लिए किसी मज़ीद मदद की ज़रूरत ही बाक़ी न रहेगी। आप और अगर ज़्यादा नहीं तो यही समझ करके मुझे मुआफ़ कीजिए कि रोज़ाना अख़बार की आरज़ू का अपनी सूरत में आने वाला नहीं लगता है। गाड़ी का पहिया पहले मुश्किल से चलता है और एक बार चल निकला, तो चल निकला।

प्रेम-पचीसी ग़ालिबन अब नव वसन्त तक न छप सकेगी क्योंकि रोज़ाना अख़बार की ज़रूरियात कब प्रेस का सामान बढ़ने देंगी।

मैं आपसे अर्ज़ कर चुका हूँ कि मेरे 'आज़ाद' और 'ज़माना' के मज़ामीन के मुतअल्लिक़ कुल बहत्तर रुपये आते हैं। छप्पन रुपये पहले थे इन दो ताज़ा क़िस्सों की उजरत शामिल करके बहत्तर रुपये हो जाते हैं।

आपने फ़रमाया था कि प्रेम-पचीसी साढ़े चार जुज़ छप चुकी है और इसके अख़राजात में किताबत-काग़ज़ वग़ैरह बहत्तर रुपये हुए हैं। गोया हमारा और आपका हिसाब यहीं तक साफ़ है। अब अगर आप पचीसी को निकालना पसन्द करें और आप सिर्फ़ नफ़ा-नुक़सान में शरीक हों तो साढ़े चार जुज़ और छपवाइए ताकि नौ जुज़ की एक ख़ासी किताब हो जाए। ग़ालिबन इन नौ जुज़ में बारह कहानियाँ आ जाएँगी। अगर मेरी तरतीब के मुताबिक़ बारह क़िस्से न आ सकते हों तो आप ज़रा-सी तरमीम करके इन नौ जुज़ में बारह क़िस्से छपा सकते हैं। यह गोया पचीसी का पहला हिस्सा होगा। दूसरा हिस्सा हस्बे ज़रूरत और मसलहत बाद को शाया कर दिया जाएगा। लेकिन अगर आपका प्रेस इतना वज़न ही न निकाल सके तो मैं बदर्जा मजबूरी यह इहतमाम करूँगा कि या तो मेरे बहत्तर रुपये मुझे अता फ़रमाये जाएँ या प्रेम पचीसी के साढ़े चार जुज़ छपे हुए रेल के ज़रिये से मेरे पास भेज दिए जाएँ। ग़ालिबन इन दरख़्वास्तों में मैं ग़ैर-माक़ूलियत से काम नहीं ले रहा हूँ। मैं किसी दूसरे पब्लिशर को ढूँढूँगा। और न मिल सका तो इन्हीं साढ़े चार जुज़ का एक टाइटल पेज लगाकर साढ़े चार जुज़ की किताब बना लूँगा। सिर्फ़ दीबाचा और टाइटल की ज़रूरत होगी। और यह भी न हो सका तो शहद और घी लगाकर इन औराक़-परीशान को चाटूँगा और समझूँगा कि

ज़रे ख़ुद भाग्यारम्
बामदाए महनत तन भी खोरम्।

बहरहाल आप जो कुछ तस्फ़िया करें जल्द करें और मुझे मुत्तला फ़रमाएँ। सबसे सहल नुस्ख़ा बस छपे हुए जुज़ को भेज देना है। इसमें आपको सिर्फ़ बुक करने की देर है। दफ़्तरी ने गट्ठा बनवाया और रेल पर रख आए। आपको कोई तकलीफ़ न हुई।

मैं अब सिर्फ़ नौ जुज़ की किताब निकालना पसन्द करता हूँ बशर्ते कि आप शरीक हों और जल्द किताब को निकाल सकें। क़यामत के इन्तज़ार में बैठने से तो यही बेहतर है कि जो कुछ सवाब इस वक़्त मिलता है मिल जाए।

जब डिप्टी इन्सपेक्टर ऑफ़ स्कूल की नौकरी में प्रेमचन्द का हमीरपुर ज़िला

का दौरा करना पड़ता था। यहाँ प्रेमचन्द को पेचिश की शिकायत हुई जिससे पच्चीस वर्ष बाद प्रेमचन्द की मृत्यु हुई। उनके अपने ही शब्दों में सुनिए—गरमी के दिन थे। कोई हरी तरकारी न मिलती थी। एक बार कई दिन तक लगातार सूखी पूड़ियाँ खानी पड़ीं। यों तो मैं पूड़ियों को विष्ठा समझता हूँ और तब भी समझता था, लेकिन न जाने क्योंकर यह धारणा मन में हो गई कि अजवायन से पूड़ियों का बादीपन जाता रहता है। खूब अजवायन डलवाकर खा लिया करता। दस-बारह दिन तक किसी तरह का कष्ट न हुआ। मैंने समझा शायद बुन्देलखण्ड के पहाड़ी जलवायु ने मेरी दुर्बल पाचन शक्ति को तीव्र कर दिया लेकिन एक दिन पेट में दर्द शुरू हुआ और सारे दिन मैं मछली की भाँति तड़पता रहा। पट्टियाँ बाँधीं, पेट पर गरम बोतल फेरी, जामुन का अर्क पिया—देहात में जितनी दवाएँ मिल सकती थीं खाईं—मगर दर्द न कम हुआ। दूसरे दिन मैं पेचिश हो गई, मल के साथ आँव आने लगा, लेकिन दर्द जाता रहा। एक महीना बीत चुका था। मैं एक कस्बे में पहुँचा तो वहाँ के थानेदार साहब ने मुझसे थाने ही में ठहरने और भोजन करने का आग्रह किया। कई दिन से मूँग की दाल खाते और पथ्य करते करते ऊब उठा था। सोचा क्या हर्ज है आज यहीं ठहरो। भोजन तो स्वादिष्ट मिलेगा। थाने ही में अड्डा जमा दिया। दारोगाजी ने जिमीकन्द का सालन पकवाया, पकौड़ियाँ, दही-बड़े, पुलाव। मैंने गहनियान से लाया—जिमीकन्द तो मैंने केवल दो फाँकें खाईं लेकिन खा पीकर जब थाने के सामने दारोगाजी के कुएँ के अगने में लेटा तो दो-ढाई घंटे बाद पेट में फिर दर्द होने लगा। सारी रात और अगले दिन भर कराहता रहा। सोडे की दो बोतलें पीने के बाद के हुई तो जाकर चैन मिला। मुझे विश्वास हो गया यह जिमीकन्द की कारस्तानी है। पूड़ियों से पहले ही मेरी छुट्टी हो चुकी थी। अब जिमीकन्द से भी बैर हो गया। तब से इन दोनों चीज़ों की सूरत देखकर मैं काँप जाता हूँ।

दर्द तो फिर जाता रहा पर पेचिश ने अड्डा जमा लिया। पेट में धीमा घटे तनाव बना रहता, अफारा हुआ करता। संयम के साथ चार-पाँच मील टहलने जाता, व्यायाम करता, पथ्य से भोजन करता, कोई-न-कोई औषधि भी खाया करता किन्तु पेचिश टलने का नाम न लेती थी और वह भी घमती जाती थी। कई बार कानपुर जाकर दवा कराई। एक बार महीने भर प्रयाग में डॉक्टरी और आयुर्वेदिक औषधियों का सेवन किया पर कोई फायदा नहीं। तब मैंने तबादला कराया। बाहना या हम्मगढ पर रखा गया दोनों के जिले में और इतरा भी वह जिला जो नगर की लगाई है। यह जुलाई १९१४ की

मात है। चार महीने बाद निगम को लिखा—आपने चार-पाँच मील हवा खाने की सलाह दी है उसकी तामील कर रहा हूं। पाँच दिन से लगातार तीन चार मील घूमता हूं। उम्मीद है कि तबीयत ठीक होगी। सारी दुनिया का सनेटोजन फ़ायदा करती है मुझे इससे भी कुछ न हुआ। हकीकत यह है कि बहुत बड़ी चीज है। जिसने हमनी कद्र न की उसके लिए अफ़सोस रोने और सर धुनने के और कोई इलाज नहीं है।

प्रेमचन्द चाहते थे कि सरकारी नौकरी छोड़कर कुछ और काम करें। जब निगम ने एक नये अख़बार के बारे में लिखा तो प्रेमचन्द ने उत्तर दिया—पण्डित विश्वनाथजी अख़बार निकालने वाले हैं यह अच्छी ख़बर है। मैं अपनी मौजूदा हालत के एतबार से रोज़ाना अख़बार के लायक किसी तरह नहीं हूं। फिर उर्दू और हिन्दी दोनों का भार मुझसे क्योंकर चलेगा। अगर अख़बारी काम करना होता तो आज़ाद क्या बुरा था। उसी को निकालता रहता।

एक दूसरे पत्र में— मैं जो आजिज हूं वह मातहती से। काम ऐसा करना चाहता हूँ जिसमें बजुज़ मेरी तबीयत के और किसी का तक़ाज़ा न हो। जी में आए तो रात दिन काम करता रहूं और जी चाहे तो फौरन बन्द करूँ। मगर यह सिर्फ मालिकाना हैसियत से हो सकता है।

निजी काम के लिए धन की आवश्यकता थी और प्रेमचन्द के पास कुछ हो न हो धन नहीं था। इसलिए मेरे लिए तो अब यही मुनासिब है कि किसी प्राइवेट स्कूल की मास्टरी कर लूं जहाँ से माहवार मिले कोई प्राइवेट स्कूल की मुदर्रिसी की चर्चा हो तो मेरा ख़याल रखिएगा (क्योंकि मैं अब इससे बेकार हो गया हूं।) इसी के साथ-साथ ज़माना और आज़ाद की ख़िदमत करूं। इस तरह मुझे साठ-सत्तर रुपये माहवार का औसत पड़ता जाए। इससे ज्यादा की ख़्वाहिश नहीं और न इससे ज्यादा पा सकता हूं। ख़्वामख़्वाह तकरार से क्या लड़ूं।

कुछ किताबें लिखूंगा कुछ अपनी किताबें छपवाऊंगा। पाँच-छः सौ मेरी कमाई है इसे इन्हीं कामों में सर्फ करूंगा और जब आख़िर जब लिटरेरी शोहरत हासिल कर सकूंगा तो कोई माहवार रसाला निकालकर गुज़र करूंगा। और अगर इससे पहले हयात ने जवाब दे दिया तो फिर राम नाम सत है

क्या कहूं आपने मुझे उछालने में कोई कसर नहीं रखी। ख़ूब उछाला। मगर मैं ही कि हिम्मत का कच्चा हूं कि उछलकर परवाज़ नहीं कर सकता बल्कि नीचे गिरने के लिए डरता हूँ वरना शिवव्रतलाल वर्मन की तरह चैन से ज़िन्दगी बसर करता आप मेरी किताब जल्दी छपवा दीजिए ताकि इसकी

कम्पनी दस्तूर दूसरे हिस्से में हाथ लगे और कुछ नफा भी हो।

मार्च १६१४ तक प्रेमचन्द दुविधा में थे कि किस लेखन शैली को अपनाएँ। उन्हीं दिनों के एक पत्र में निगम को लिखते हैं— 'मुझे अभी तक इत्मीनान नहीं हुआ कि कौन-सा तर्ज़ तहरीर अख़्तियार करूँ। कभी तो बंकिम की नक़ल करता हूँ कभी आज़ाद के पीछे चलता हूँ। आजकल काउंट टालस्टाय के क़िस्से पढ़ चुका हूँ। तब से कुछ इसी रंग की तरफ़ तबीयत माइल है। यह अपनी कमज़ोरी है और क्या। यह क़िस्सा जो मैं रवाना कर रहा हूँ इसमें तर्ज़ तहरीर के मुतल्लिक़ कोशिश नहीं की गई सीधी-सादी बातें लिखी हैं। मालूम नहीं आप पसन्द करेंगे या नहीं।'

एक बार प्रेमचन्द बस्ती से इलाहाबाद जा रहे थे। सरजू नदी पार करनी थी। प्रेमचन्द शिवरानी देवी तथा कमला स्टीमर में बैठे थे। प्रेमचन्द ऊँची जगह पर थे और उनकी गोद में कमला बैठी थी, नीचे फर्श पर शिवरानी थीं। एक पचीस वर्ष का युवक घूरकर शिवरानी देवी की ओर देख रहा था और धीरे धीरे पास आता जा रहा था। शिवरानी देवी ने प्रेमचन्द के पाँव को दबाया। प्रेमचन्द का ध्यान जो किसी से बातें करने की ओर लगा था इस ओर आकर्षित हुआ। उन्हें क्रोध आया। बच्ची को माँ की गोद में देकर उसकी गर्दन पकड़ ली और काफी दूर तक ले जाकर बोले— "सरजू में फेंक दूँ?"

"मैं तो खड़ा था। मैंने क्या गुनाह किया है?"

"स्त्रियों के सिर पर चढ़ते हो। दोबारा ज़बान निकाली तो सरजू में फेंक दूँगा।"

"क्या तुम्हीं ने किराया दिया है?"

"किसी के सिर पर चढ़ने के लिए किराया देकर आए हो?"

प्रेमचन्द बाय के मारे बीमार रहते थे। कमज़ोर थे। इलाहाबाद इलाज कराने जा रहे थे।

बस्ती में पेचिश और बढ़ गई थी। प्रेमचन्द ने छः महीने की छुट्टी ली। लखनऊ के मेडिकल कॉलेज में इलाज करवाया परन्तु निराशा हुई। फिर काशी आकर एक हकीम से इलाज कराया। तीन चार महीने बाद थोड़ा-सा फ़ायदा मालूम हुआ पर बीमारी जड़ पकड़ चुकी थी। बस्ती सोन्ड हो पुरानी शामत हो गई। तब प्रेमचन्द ने दौरे की नौकरी में स्कूल की नौकरी के लिए अर्ज़ी दी। देखूँ डायरेक्टर साहब कब तक मास्टरी पर वापस भेजते हैं। दरअसल इस दौर से तंग आ गया हूँ और मास्टरी को इस ज़िन्दगी पर तरजीह देता हूँ। सिर्फ़ तनख़्वाह की कमी की शिकायत अलबत्ता है। अगर मुझे पचास

रुपये देगा तो वहीं चला जाऊंगा।

ऐसा ही हुआ। मई १६१५ में वह बस्ती में ही पचास रुपये पर सहायक मास्टर नियुक्त हो गए।

यहाँ बस्ती में ही शिवरानी देवी को पता लगा कि उनकी सौत अभी जिन्दा है। उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

"एक दिन की घटना है कि दरवाज़े पर उनके पहले साले बैठे थे। आप उन्हीं से बातें कर रहे थे। इत्तिफ़ाक़ से मेरी दो साल की लड़की कमला बकवाँ दरवाज़े पर चली गई। मैं उसे देखने के लिए दरवाज़े की तरफ़ गई। मैंने देखा लड़की उनके साले साहब की गोद में थी। वे बड़े प्यार से उसे चुमकार रहे थे। इसी बीच में रंजीदा स्वर में बोले—अगर हमारा सम्बन्ध भाईचारे का भी होता तो क्या मेरी बहन इसे प्यार न करती! इस पर आप खामोश थे। वे बहुत-सी बातें अपनी बहन के विषय में कहते रहे। मैं बड़े ध्यान से उनकी बात आड़ में सुनती रही। मेरे भी बदन का खून गरम हो रहा था उस समय। उसके बाद वे चले गए। आप लड़की को लेकर अन्दर आये। वही पहला दिन था जब मुझे मालूम हुआ कि वे अभी ज़िन्दा हैं। मुझे तो धोखा दिया जाता रहा था कि वे मर गई हैं।" अन्दर आकर इस पर बहस हुई। प्रेमचन्द की धारणा थी कि जिसको इन्सान समझे जीवित है वही जीवित है जिसे समझे मर गया वह मर गया।

शिवरानी देवी ने कहा—कृपा करके उन्हें ले आइए।

प्रेमचन्द—मैं तो लेने नहीं जाऊंगा।

शिवरानी देवी—क्यों नहीं जाइयेगा? शादी हुई थी तमाशा नहीं था!

प्रेमचन्द—मैंने शादी नहीं की थी। मेरे बाप ने शादी की थी।

शिवरानी देवी—बाप ने तो जो अपनी शादी की थी उसे आप गले बाँधे फिर रहे हैं। बाप की शादी की ज़िम्मेदारी तो आपके सिर है अपनी नहीं? यह ज़िम्मेदारी का तुक नहीं है।

प्रेमचन्द—चाहे हो या न हो मैं लाऊँगा नहीं।

शिवरानी देवी ने लिखा है कि उन्होंने सौत को पत्र लिखा और उन्हें बुलाया भी। चौथे रोज़ उनका जवाब आया कि अब वे खुद लेने आएँगे तो मैं चलूँगी। प्रेमचन्द लेने नहीं गये। फिर उन्हें मैं बराबर खत लिखा करती थी। उनका खत कैथी में लिखा रहता था। उसे मैं उन्हें दे दिया करती।

प्रेमचन्द बस्ती में ही थे जब प्रेम-पचीसी (उर्दू) का पहला भाग प्रकाशित हुआ। इसमें ये कहानियाँ थीं—(१) ममता (२) विक्रमादित्य का तेगा

(३) 'बड़े घर की बेटी' (४) 'रानी सारन्धा' (५) राजहठ (६) राजा हरदौल (७) नमक का दारोगा (८) आलिम ए-अमल, (९) गुनाह का अग्निकुण्ड (१०) 'धमरज माहसिन' (११) आह-बेकस और (१२) आल्हा।

प्रेम-पचीसी की प्रस्तावना के बारे में प्रेमचन्द ने एक पत्र में निगम को लिखा— इन हजरत ने तारीफ ज्यादा की है, फारूक शाहपुरी ज्यादा मौजूं आदमी हो सकते थे। मगर खैर, अब न लिख सकें तो इसी को रहने दीजिए। मगर मुख्तसर ऐसा होना चाहिए कि एक पत्थर से ज्यादा न हो। आपकी तरफ से मैंने एक मुख्तसिर दीबाचा लिख दिया है। अगर आपको पसन्द आए तो इसे अपनी तरफ से दर्ज कर दीजिए। आपकी मेहनत और तरद्दुद रफा हो जाएगी।'

'प्रेम-पचीसी' (भाग १) पर जितना खर्च हुआ वह प्रेमचन्द ने अपनी जेब ही से दिया। पुस्तक की बिक्री का प्रबन्ध भी प्रेमचन्द को स्वयं ही करना पड़ा। अगस्त १९१५ में उन्होंने निगम से पूछा— "दायरतुल अदब मुझसे प्रेम-पचीसी बचन के लिए तलब करते हैं। उनकी निस्बत आपका क्या ख्याल है? हिस्सा दोयम की इशाअत के मुतअल्लिक भी वह आमादा हैं। आपका जवाब आ जाए तो उन्हें जवाब दूं।"

डेढ़ महीने बाद लिखा— प्रेम पचीसी (हिस्सा अव्वल) दायरतुल अदब के पास कुछ जिल्दें भेज दी हैं और कुछ हिन्दुस्तानी में तकसीम कराई। मगर अभी तक कुछ नतीजा नहीं निकला। आपने इसके लिए क्या कोशिश की? स्कूली कुतुब के सिलसिले में मंजूर हो जाएगी? हिस्सा दोयम आप ही छपवाइए। अगर आपका प्रेस जल्द छाप सके तो इससे और क्या बेहतर होगा। अगर आप छपवाएँ तो फिर फैसला हो जाना चाहिए। मैं आप ही के फैसले पर राजी हो जाऊँगा।"

इसी पत्र में उन्होंने निगम को बधाई दी कि उनके भाई रामनारायण निगम, डिप्टी कलक्टर ने नैनीताल में मकान लिया। "इसका कुछ और हाल सुनने के लिए मुश्ताक हूँ। अब कभी-कभी गरमियों में जंगल की हवा खाने का मौका मिलेगा और शायद बन्दूक से शिकार भी खेल सकूँ, बशर्ते कि वह मकान [illegible] को भूल न जाएँ।

प्रेमचन्द का स्वास्थ्य ठीक न हुआ। जून १९१५ में एक पत्र में निगम को लिखा— मेरे लिए दुआ का जिक्र फिजूल है। मैं जिस धुन में हूँ... नौकरी छोड़ना चाहते थे। 'जमाना' कार्यालय के काम में दिलचस्पी लेने की भी बात फिर चली। प्रेमचन्द निगम को लिखते हैं—

जमाना चूंकि इस वक्त बिलकुल नाजुक हालत में आ गया है, इस वक्त में

उसका नेम इतना बेशक़ीमत नहीं है जितना दूसरी हालत में होता। मैं उसकी क़ीमत एक हज़ार ख़याल करता हूँ क्योंकि गुड नेम के साथ ही इसमें बैड नेम की भी आमेज़िश है। बहरहाल मेरा तख़मीना यह है—मेरा ख़याल है कि अगर कोई नया माहवार क़ाबलियत के साथ ऐडिट किया जाए और इस पर एक हज़ार रुपया सर्फ़ कर दिया जाए तो इसे इतनी मुस्तहरी हासिल हो जाएगी।

यह मैं तसलीम करता हूँ कि आपको इस माहवार की बदौलत बहुत ज़ेरबार होना पड़ा जिसकी मिक़दार ग़ालिबन तीन या चार हज़ार तक हो। मगर ग़ालिबन खुले बाज़ार में इस जिंस को इतनी क़ीमत हरगिज़ न मिल सकेगी। और फिर इस ख़सारे के और भी असबाब हैं जिनके तफ़सील की यहाँ ज़रूरत नहीं। अगर एक हज़ार गुड नेम की क़ीमत हो तो इसका निस्फ़ हिस्सा पाँच सौ होता है। मैं इस रक़म को दो या तीन साल में अदा करने का ज़िम्मेदार हो सकता हूँ। सूद बशरह बाज़ार महसूब करने को भी रज़ामन्द हूँ।

मैं इसका एडीटोरियल और बड़ी हद तक मैनेजीरियल चार्ज लेने पर तैयार हूँ। आप सिर्फ़ अपने रसूख़ और ज़ाती असर से और नीज़ इश्तिहारात के मुतअल्लिक़ जितना मुनासिब समझें काम करेंगे। मैं कोशिश करूँगा कि जहाँ तक मुमकिन हो उसका ख़र्च कम हो। इसके अलावा फ़ाइनेंशियल चार्ज बिलकुल आपका रहेगा—यानी काग़ज़ किताबत छपाई कटाई पोस्टल चार्जेज़। इनका हिसाब आप माहवार अदा करने का बन्दोबस्त करेंगे। साबिक़ा बक़ाया का हिसाब इससे अलग रहेगा। तारीख़ शराकत से आप जितना रुपया लगाएँगे वह हर माह के आख़िर में या हस्ब गुंजाइश दिसम्बर या जनवरी में अदा होगा। जितना नफ़ा या नुक़सान होगा उसमें हम और आप बराबर के शरीक होंगे। मेरा ख़याल है कि जनवरी तक हम इन रक़ूम को अदा कर सकेंगे। लेकिन अगर उस वक़्त भी कमी रहे और दूसरे साल के लिए रुपया की ज़्यादा ज़रूरत हो तो फिर हस्ब ज़रूरत कोई सबील करेंगे। मगर ता वक़्ते कि ये ज़िम्मेदारियाँ बेबाक न हो जाएँ। आमदनी में से जहाँ तक इमकान में होगा कुछ न लें। एडीटर चाहे आप रहें या मैं। अगर आपके नाम से ज़्यादा फ़ायदा हो तो मुझे कोई शिकायत नहीं। वरना मुझे ही जॉइंट एडीटर रहना होगा। अगर यह शरायत आपको तस्लीमात के साथ तय हो जाएँ तो हम लोग दिसम्बर तक चार-पाँच नम्बर वक़्त पर निकालकर कुछ वक़ार क़ायम कर लेंगे और जनवरी से ग़ालिबन ज़्यादा फ़ायदा के साथ आग़ाज़ हो। मैंने माली ज़िम्मेदारियाँ सब आप पर रखी हैं। इसकी वजूह सुनिए। मेरे पास इन छः माह की रुख़सत के बाद आठ सौ रुपये हैं। तीन सौ रुपये मैंने तीन असामियों का अठारह

फीसदी सूद पर कर्ज दे दिए हैं। मेरा नकद सरमाया इस वक्त कुल पाँच सौ रुपये है। इसे मैं उस वक्त तक के लिए गुज़र का वसीला समझता हूँ जब तक कि ज़माना से मुझे कोई फायदा न हो। और कौन जानता है इस मुबारिक वक्त के लिए कितने दिनों तक इन्तज़ार करना पड़े।

गो मैं माली जिम्मेवारियों का बोझ उठाने के बिलकुल नाकाबिल हूँ। इसी असना में अगर लड़के की शादी तय हो गई तो गालिबन यह रकम भी मेरे हाथ से निकल जाएगी। लड़के इस साल फेल हो गए यहीं हैं। स्कूल लीविंग में नाम लिख दिया है। भाभी नहीं आईं। मकान पर हैं। तेजनारायण भी यहीं हैं। अपने मकान पर हैं।

मैंने अपनी माली हालत का जो किस्सा लिखा है वह हर्फ-ब-हर्फ सही है। मैं आपके जवाब का इन्तज़ार करूँगा।

आज़ाद ने लिखा— आपने मेरी निस्बत जो कुछ फरमाया है वह बामदू नहीं होने के हमदर्दी से खाली है। हर एक काम जो आप छेड़ना चाहते हैं इसमें रुपये की ज़रूरत पहले ही पड़ती है। रुपया न आपके पास है न मेरे पास। बताइए काम क्योंकर चले? एंटरप्राइज़ खाली जब से या महज़ हवाई बातों पर तो नहीं हो सकती—आप यह तसलीम करेंगे कि इन्सान को इत्तफाकी ज़रूरियात के लिए पसमांदा रखना चाहिए। मेरे पास बस इतना ही है। इतना सरमाया नहीं जिससे कोई तिजारती मंसूबा बाँधा जाए। बस आप मुझसे ईसार का तकाज़ा करते हैं। मैं अपने को इस काबिल पाता नहीं। मेरे पास आठ रुपये माहवार का जेब लगा हुआ है वह किसी तरह मैं नहीं छोड़ सकता। आप कोई ऐसी सूरत बताइए जिससे मैं अपनी रोटी हासिल करते हुए एंटरप्राइज़ पर खर्च कर सकूँ। इसके लिए सबसे पहली बात यह होगी कि आप सरमाया पैदा करें। मैं तो अबकी ही दफा लखनऊ आपके यहाँ गया था मगर मैंने अपने कमरे में देखा माली मुश्किलात नज़र आईं। इस वजह से ख्वाहमख्वाह उलझना फिजूल समझा। अगर आपकी माली हालत खुशगवार साबित बेहतर हो गई है तो आप मुझे बुलाइए। मैं हाज़िर हूँगा। और बाहमी मशवरे से कोई सूरत निकालेंगे।

एक बार बस्ती से कानपुर गए। वहाँ गणेशशंकर विद्यार्थी से भेंट हुई। विद्यार्थीजी ने तब हाल ही में 'प्रताप' निकाला था। विद्यार्थीजी का स्वयं सारा काम करते देखकर प्रेमचन्द बड़े प्रभावित हुए और बाहर निकलकर रास्ते में कहा—'विद्यार्थीजी बड़े मेहनती हैं। कार्यालय का सब काम अपने ही हाथों करते हैं। हम ही फुरसत कहते हैं। इसी तरह के आदमियों का मुल्क को

ज़रूरत है। ऐसे ही आदमी अपने जीवन को सफल बना सकते हैं। मेरी भी इच्छा है कि नौकरी छोड़कर कहीं एकांत में बैठकर साहित्य की सेवा करूँ। मेरे पास दस बीघा जमीन होती तो मैं अपने खाने भर का गल्ला पैदा कर लेता और चुपचाप एकान्त में बैठकर साहित्य की सेवा करता।

बहुत दिन नहीं गुजरे थे कि प्रेमचन्द ने हिन्दी में दोबारा लिखना शुरू किया। 'प्रेमा' और 'हमखुर्मा ओ हमसवाब' साथ-साथ छपी थी। इसका एक कारण यह भी था कि बस्ती में प्रेमचन्द का सम्बन्ध कुछ हिन्दी साहित्यिकों से हुआ। इनमें से एक मन्नन द्विवेदी गजपुरी थे। यह डोमरियागंज के तहसीलदार थे। प्रेमचन्द के शब्दों में द्विवेदी 'बड़ा मसखरा आदमी है साथ ही जानदार भी है।' इन्हें साहित्य से बड़ा प्रेम था। और जब भी प्रेमचन्द तथा द्विवेदीजी की भेंट होती साहित्य चर्चा चलती। जब दौरे पर होते तो एक-दूसरे के घर पर ठहरते।

प्रेमचन्द ने हिन्दी में भी गल्पें[1] छपवाना शुरू किया। सरस्वती में छपी इनकी पहली गल्प बस्ती से ही भेजी गई थी। जब पहला हिन्दी कहानी संग्रह छपा तो इसकी प्रस्तावना द्विवेदीजी ने ही लिखी (जब १९२१ में गजपुरीजी की मृत्यु हुई तो प्रेमचन्द ने 'ज़माना' दिसम्बर १९२१ के अंक में इन पर एक लेख लिखा जिसमें कहा— अफ़सोस है कि गजपुरीजी की जिन्दगी का बेशतर हिस्सा सरकारी कागजात की खानापुरी में सर्फ हुआ। फ़िक्रमाश ने आपको मुलाज़मत के दायरा से बाहर न निकलने दिया।

इसी समय के एक पत्र में निगम को लिखा—'प्रेम-पचीसी (उर्दू) के हिन्दी तर्जुमे के लिए कई जगह से असरार हो रहे हैं। मैं खुद ही इस काम को हाथ में लूँगा। अब हिन्दी लिखने की मश्क भी कर रहा हूँ। उर्दू में अब गुज़र नहीं है। मालूम होता है कि बालमुकुन्द गुप्त मरहूम की तरह मैं भी हिन्दी लिखने में ज़िन्दगी सर्फ कर दूँगा। उर्दूनवीसी में किस हिन्दू को फ़ैज हुआ जो मुझे हो जाएगा'

अक्तूबर १९१५ के एक और पत्र में— 'ज़माना' के लिए एक क़िस्सा लिखा है अब मैं हिन्दी में लिख रहा हूँ। सरस्वती को एक मज़मून[2] दिया। प्रताप

---

१ श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने अपने साहित्यिक संस्मरण में लिखा है कि प्रेमचन्द की कई गल्पों का हिन्दी-अनुवाद कलकत्ता के 'भारतमित्र' में छपा था। ये अनुवाद 'ज़माना' से किए जाते थे परन्तु 'ज़माना' का नाम नहीं दिया जाता था जैसे 'राजा हरदौल' का अनुवाद।

२ प्रेमचन्द के पत्रों में प्रायः मज़मून का आशय कहानी है।

के लिए लिखा। इससे ज्यादा काम करने से माजूर हूँ।

यहाँ इस बात का ज़िक्र करना ज़रूरी है कि इस समय प्रेमचन्द प्राइवेट तौर पर एफ० ए० पास करना चाहते थे। 'आजकल एफ० ए० की धुन में कुछ लिटरेरी काम नहीं होता। कहीं से तहरीक भी नहीं हुई और मुफ्त में कलम घिसना फिजूल मालूम होता है।'

डेढ़ महीने बाद—"आजकल कोर्स की कुतुब के लिए इन्तखाब का ऐलान हुआ है। अगर आप इस मैदान में आना चाहें तो मैं इसमें भी आपका साथ देने को तैयार हूँ। 'रूल्ज़ ऑफ इंडिया' सीरीज़ की तरह चौंसठ सफहात पर गवर्नरों के सवानेह लिखने का इरादा है। एफ० ए० भी होता रहेगा। इसके लिए मैं घंटा भर से ज्यादा वक्त नहीं सर्फ करता। मैं करना तो बहुत कुछ चाहता हूँ, मगर मुझमें न एंटरप्राइज है और न रुपया। आपके पास एंटरप्राइज है मगर रुपया नदारद। जब तक कोई सरमाया वाला शरीक न हो कैसे काम चले?"

अपने आत्म-कथात्मक निबन्ध में प्रेमचन्द ने लिखा था कि 'गणित मेरे लिए गौरीशंकर की चोटी थी। कभी उस पर न चढ़ सका। इन्टरमीडिएट में दो बार गणित में फेल हुआ और निराश होकर इम्तिहान देना छोड़ दिया। दस बारह साल के बाद जब गणित परीक्षा में ऐच्छिक हो गई तब मैंने दूसरे विषय लेकर उसे आसानी से पास कर लिया।' एफ० ए० में उनके लिए हुए विषय थे—अंग्रेजी, फारसी, आधुनिक इतिहास तथा तर्क। प्रेमचन्द १९१६ में दूसरी श्रेणी में पास हुए।[1]

बस्ती में रहते हुए प्रेमचन्द ने बहुत-सी कहानियाँ लिखीं। कुछ के नाम इस प्रकार हैं—'सिकारी राजकुमार', 'शामत-ए-आमाल', 'पछतावा', 'मरहूम', 'गुरन की कटार', 'बेटी का धन', 'दो भाई', 'पंचायत (पंच परमेश्वर)', 'मरे पूर गमर', 'जुगनू की चमक', 'अमृत', 'कर्मों का फल', 'मनाउन', 'नकी का गबा' और 'अनाथ लड़की'। जैसे कि आगे देखेंगे इन कहानियों में से कई प्रेम-पचीसी (भाग २) में छपीं।

---

१ [illegible] इन्टरमीडिएट की परीक्षा दी और [illegible] १९१० में [illegible] है। [illegible] में सुरक्षित है।

११

गोरखपुर मे अध्यापक के पद पर

अगस्त १९१६ म प्रमचन्द का तबादला बस्ती से गोरखपुर के नामल स्कूल का हुआ। इस स्कूल म प्रमचन्द न साढे चार वष काम किया। गृहस्थ-जीवन अध्यापन-कार्य तथा हिन्दी-साहित्य के क्षत्र म ख्याति की दृष्टि स उनके जीवन का यह चरण बहुत महत्त्वपूर्ण था।

जब प्रमचन्दजी अपनी पत्नी तथा पुत्री के साथ गोरखपुर पहुँचे तो शिव रानी देवी आसन्न प्रसवा थी और जिस क्वाटर में प्रेमचन्द को ठहरना था वह खाली न था। इसलिए प्रमचन्दजी को सपरिवार स्कूल ही म ठहरना पडा। लगभग एक दर्जन मास्टर और दो सौ छात्र उन्ह घेर बठे। शिवरानी देवी की हालत खराब देखकर एक मास्टर उन्ह अपने घर ल गए। उसी रात को एक लडका पैदा हुआ। इसका नाम श्रीपतराय (धुन्नू) पडा। इस अवसर पर सारे स्टाफ को दावत दी गई।

नामल स्कूल क हेडमास्टर बेचनलाल प्रेमचन्द से बहुत खुश थ। जब एक मास्टर का फस्ट एड का डिप्लोमा कोस के लिए इलाहाबाद भेजने का प्रश्न उठा तो बचनलाल ने प्रेमचन्द ही को चुना। इस कोस के पास करने से प्रेमचन्द के वतन म दस रुपये की वृद्धि हुई। गोरखपुर जाते ही पचास रुपय से साठ रुपय हुए थ। अब सत्तर) रुपय हो गए। इसम स पचीस रुपय वह छोटे भाई को भजते। चाची (विमाता) साथ थी। बमचम्व रहता। दूध तो अपन बच्च को पिला दती और आठ महीने क धुन्नू को साबूदाना पानी म पकाकर दिया जाता (शिवरानी देवी को बुखार आता था)। एक बार जब प्रमचन्द चची और उनके चचेरे भाई की बीवी क साथ प्लेग स बचने क लिए गोरखपुर आ गए तो चाची को अच्छा न लगा और झगडा हुआ। एक बार बहन अपन बच्चों को लकर इन्फ्लुएन्ज़ा से बचन के लिए गोरखपुर आईं (शिवरानी देवी बीमार थी और घर का बहुत-सा काम प्रमचन्द स्वय ही करते थ) इस पर भी चाची

मुहसाद। आखिर वह विदा किया गया।

प्रेमचन्द के एक शिष्य मक़बूलहसन अलीम ने एक संस्मरण में लिखा है—

आपका मामूल था कि स्कूल में अमूमन ठीक वक्त पर पहुँच जाते। रहने के लिए आपको स्कूल ही में सरकारी मकान मिला था। घण्टा बजा और आप आमराना अन्दाज़ में निकले। अक्सर आप खुले सर, बाल परीशान और एक कोट पहने हुए जिसके बटन खुले रहते, आम तौर पर धोती पहने एक अजीब अन्दाज़ रफ़्तार से स्कूल आते थे। लड़के जितना उनका अदब करते थे किसी दूसरे का नहीं करते थे। सभी जमात को तारीख़ पढ़ाते थे। उनका दस्तूर यह था कि खुद तारीख़ की किताब लेकर पढ़ने चले जाते। चूँकि लड़के मिडिल और ट्रेनिंग पास होते थे, इसलिए ज्यादा दिक्कत नहीं पड़ती थी। एक घण्टा में जो कुछ पढ़ाना होता पन्द्रह मिनट में पढ़ाकर तारीख़ के मुतअल्लिक वे बातें बयान करते जो उस तारीख़ में न होतीं। नहीं मालूम उनकी मालूमात कितनी वसीह थी। अक्सर ऐसा होता कि जो कुछ तारीख़ में पढ़कर सुनाते उसके खिलाफ़ मुख्तलिफ़ तारीख़ी हवालों से बयान करते। बाज़ वाक़ियात के मुतअल्लिक यह भी दिखलाते कि महज़ हिन्दू मुसलमानों में नफ़ाक़ पैदा करने के लिए लिखी गई हैं। गरज़ उनका घण्टा अजीबो-गरीब मालूमात का घण्टा होता। घण्टा खत्म होने के क़ब्ल यह भी फ़र्मा देते कि देखो जो कुछ मैंने बयान किया है वह समझने की चीज़ है। इम्तिहान में वही लिखना जो तुम्हारी किताब में है वरना फ़ेल हो जाओगे।

'क्लास में उनके आते ही ऐसी दिलचस्पी पैदा हो जाती थी कि हर एक उनकी तरफ़ मुखातिब हो जाता। यह ज़रूरी न था कि जो सबजेक्ट पढ़ाना है वही पढ़ाया जाए। बल्कि जिस मौजू की तरफ़ उनका रुझान या लड़कों का तक़ाज़ा हुआ, बयान फ़रमाने लगे। मगर क्लास में पढ़ाते वक्त कोई हँसी की बात आ गई तो बेअख्तियार हँसने लगे। किसी का शोरोहंगामा नहीं था। एक मरतबा का वाक़िया है कि इन्सपेक्टर साहब मुआइना के लिए आये। बाबू बेचनलाल हेडमास्टर जो बहुत सीधे आदमी थे कुछ परीशान-से थे। तमाम लड़के भी अपने-अपने रूम में आरास्ता थे मगर हमारे उस्ताद का वही आलम था जो पहले लिख चुका हूँ। यानी सर के बाल परीशान कोट का बटन खुला हुआ। इन्सपेक्टर साहब क्लास में आये मगर इसका भी कोई असर न हुआ। कुछ मिनट में गुफ़्तगू हुई। उसके बाद इन्सपेक्टर साहब चले गए।

इसी आत्मव्याख्यान में बताया है कि 'उस ज़माना में जिस क़दर अफ़साने लिख गए और रिसालों में भेजे गए तक़रीबन कुल मज़मून मेरे याद किए हुए

के बीच मित्रता तथा सहानुभूति और प्रेम का सम्बन्ध था। छात्राध्यापक तो इस बात की टोह में रहते कि प्रेमचन्द उनसे किसी काम के लिए कहें परन्तु उधर प्रेमचन्द थे कि कभी किसी से निजी काम नहीं लेते थे।

जहाँ प्रेमचन्द अपने शिष्यों से स्नेह का व्यवहार करते थे वहाँ अपने उच्च अधिकारियों से उनका रवैया एक अत्यन्त स्वाभिमानी पुरुष का था। यहीं गोरखपुर में ही एक बार प्रेमचन्द की गाय अंग्रेज कलक्टर के अहाते में घुस गई। कलक्टर ने उसे गोली मारने की धमकी दी और गाय के मालिक को बुलवाया। इससे पहले कि कलक्टर का चपरासी प्रेमचन्द के घर पहुँचता कलक्टर के घर के बाहर दो-ढाई सौ आदमी इकट्ठे हो गए। धमकी का जवाब धमकी से दिया गया— यदि गोवध हुआ तो हंगामा हो जाएगा। भीड़ के शोरगुल को सुनकर प्रेमचन्द स्वयं वहाँ पहुँचे। वाद विवाद जारी था। प्रेमचन्द ने जनसमूह की बातें सुनकर कहा "गौ बहुत अच्छा जानवर है मगर उसके मरने पर इतनी आपत्ति की कोई जरूरत नहीं।

वाह साहब जब मुसलमान गाय को मारते हैं तो खून हो जाता है।

यह ढंग ठीक नहीं है। जब अंग्रेजों के बूचड़खाने में सैकड़ों ही गायों का प्रतिदिन वध होता है तब आप कुछ नहीं करते

कलक्टर के सामने पहुँचे "आपने मुझे याद किया?"

हाँ यह गाय आपका है?

हाँ मेरी ही है।

यह हमारे अहाते में घुस आया है। हम इसको गोली से मार देगा।

यदि मारना ही था तो मुझे याद क्या किया? मार डालते।

हाँ हम मार सकता है। हम अंग्रेज है कलक्टर है।

आप अंग्रेज हैं कलक्टर हैं। ठीक है। मगर पब्लिक की राय भी तो एक चीज है।

पार्क भी बनवाया। मकान के सामने एक नीम का वृक्ष था जिसके नीचे बैठकर प्रेमचन्द अपना लेखन-कार्य किया करते थे। वह वृक्ष तो अब नहीं है परन्तु उसी स्थान पर संगमरमर का एक चबूतरा बनवा दिया है। नार्मल स्कूल के छात्राध्यापकों द्वारा किया गया यह काम बड़ा सराहनीय है। इसके साथ ही कुछ उत्साही अध्यापकों ने प्रेमचन्द के शासनकाल के छात्रों को शिक्षा विभाग की ओर से एक प्रश्नावली भिजवा जिसमें प्रेमचन्द के बारे में संस्मरण मँगवाये। इन संस्मरणों से प्रेमचन्द के जीवन पर बड़ी रोशनी पड़ती है। इन संस्मरणों के कुछ अंश जो काम में आने थे उनमें से कुछ को मैंने ऊपर उद्धृत किया है।

आज हम इसे छोड़ देते हैं। मगर फिर आया तो मार डालेंगे। परन्तु अगली बार मुझे याद न कीजियेगा।

इसी तरह एक बार स्कूल का मुआइना हुआ था। प्रेमचन्द एक रोज तो इन्स्पेक्टर के साथ रहे परन्तु दूसरे दिन जब खेल खेलने जाने लगे तो आप घर चले गए। इन्स्पेक्टर ने कार में जाते देखा कि प्रेमचन्द कुर्सी पर बैठे पढ़ रहे हैं और उठकर सलाम भी नहीं किया। गाड़ी ठहराई। चपरासी भेजकर बुलाया। प्रेमचन्द ने पूछा, कहिये क्या है?

तुम बड़े मगरूर हो। तुम्हारा अफसर तुम्हारे दरवाजे से निकल जाता है और तुम उठकर सलाम भी नहीं करते।

मैं जब स्कूल में रहता हूँ तब नौकर हूँ। बाद में मैं भी अपने घर का बादशाह हूँ। आपने जो कहा, यह कहकर अच्छा नहीं किया। इस पर मुझे अधिकार है कि आप पर केस चलाऊँ।[1]

इन्स्पेक्टर चला गया। आपने मित्रों से सलाह की कि किस प्रकार इज्जत हतक का दावा किया जाए। मित्रों ने दबाव डालकर प्रेमचन्द को मुकदमा दायर करने से रोका।

गोरखपुर के साढ़े चार साल के अरसे में प्रेमचन्द की हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र में भी ख्याति हुई। बस्ती में प्रेमचन्द की मित्रता मन्नन द्विवेदी गजपुरी से हुई थी। यहाँ गोरखपुर में उनकी मित्रता श्री दशरथप्रसाद द्विवेदी[2] तथा महावीरप्रसाद पोद्दार से हुई। इन दोनों व्यक्तियों ने प्रेमचन्द को पूर्णतया हिन्दी में आने की प्रेरणा दी।

महावीरप्रसाद पोद्दार गोरखपुर की हिन्दी पुस्तक एजेंसी के मालिक थे। वही इस संस्था के व्यवस्थापक थे। पोद्दारजी ने ही 'सप्त सरोज' नाम से प्रेमचन्द का पहला हिन्दी गल्प-संग्रह छापा। यह १९१७ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में ये सात कहानियाँ हैं—(१) 'बड़े घर की बेटी' (२) 'सौत'

---

[1] ऊपर लिखा वृत्तान्त प्रेमचन्द घर में [illegible] लिखा गया है। गोरखपुर में इसी प्रकार का एक सुनने में आया परन्तु उस बार इन्स्पेक्टर का नाम [illegible] पर [illegible] के बारे में इसी घटना का उल्लेख किया जाता है।

[2] दशरथप्रसाद द्विवेदी [illegible] रेलवे के ऑफिस में काम करते थे। [illegible] से उन्होंने [illegible] था। [illegible] हिन्दी के [illegible] में [illegible] किया था। उनके [illegible] ने [illegible] की [illegible] नियुक्त हुए। उनका [illegible] १९६० में हुआ।

(३) सज्जनता का दण्ड (४) पंच परमेश्वर' (५) नमक का दारोगा (६) उपदेश' और (७) परीक्षा।

इनमें से तीन सज्जनता का दण्ड पंच परमेश्वर सबसे पूर्व सरस्वती में १९१५-१६ में छपी थी।

सरस्वती द्वारा की गई सप्त सरोज की आलोचना इस प्रकार थी—प्रेमचन्दजी के नाम से सरस्वती के पाठक अपरिचित नहीं हैं। आपकी लिखी कितनी ही कहानियाँ सरस्वती में निकल चुकी हैं। आपकी भाषा सरल बोल चाल की और मुहावरेदार होती है। अब तक आप उर्दू में ही अपने विचार प्रकट करते थे। अब कुछ दिनों से आपने हिन्दी को अपनाया है। कहानियों में स्वाभाविकता भी है और उनसे कुछ-न-कुछ शिक्षा भी मिलती है। मनोरंजन भी खूब होता है। पुस्तक पढ़ने लायक है।

सप्त सरोज के प्रकाशन पर हिन्दी साहित्यिक क्षेत्रों में धूम-सी मच गई। किताब हाथों-हाथ बिकी। उन दिनों हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मानी जाने वाली प्रकाशन-संस्था हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई ने भी प्रेमचन्द से एक कहानी संग्रह माँगा और प्रेमचन्द ने नौ कहानियों का संग्रह उस संस्था को प्रकाशन के लिए दिया। संग्रह नवनिधि[1] के नाम से छपा। इसके लिए प्रेमचन्द को दो सौ रुपए मिले। इस संग्रह में वे कहानियाँ थीं जो प्रेमचन्द ने हमीरपुर में लिखी थीं और जो उर्दू प्रेमपचीसी (भाग १) में भी छपी थीं। ये कहानियाँ थीं—(१) राजा हरदौल (२) रानी सारन्धा (३) मर्यादा की वेदी (४) पाप का अग्नि कुण्ड (५) जुगनू की चमक (६) धोखा (७) अमावस्या की रात्रि (८) ममता और (९) पछतावा।

नवनिधि के प्रकाशन के थोड़े ही दिन बाद प्रेम पूर्णिमा नामक एक संग्रह भी निकला। इसमें भी कुछ कहानियाँ हमीरपुर के समय की थीं और जो प्रेम पचीसी (भाग १) में छप चुकी थीं। ये कहानियाँ इस प्रकार हैं—(१) ईश्वरीय न्याय (२) शंखनाद (३) खून सफेद (४) गरीब की हाय (५) दो भाई (६) बड़े घर की बेटी (७) धर्म-संकट' (८) दुर्गा का मन्दिर (९) सेवा मार्ग

१ हिन्दी के बहुत-से आलोचकों ने यह समझकर कि 'नवनिधि' और 'प्रेम पूर्णिमा' की कहानियाँ सप्त सरोज की कहानियों के बाद लिखी गईं प्रेमचन्द की कला में ह्रास की झलक देखी। प्रकाशचन्द्र गुप्त लिखते हैं— प्रेम पूर्णिमा में प्रेमचन्द की कहानी कला में कुछ विकास न हुआ तथा सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर सप्त सरोज और प्रेम पूर्णिमा के बीच उनकी कला का कुछ ह्रास ही हुआ। काश ये आलोचक थोड़ी खोज और मेहनत से कहानियों का ठीक तिथि-क्रम पता करने के बाद किसी परिणाम पर पहुँचते।

(१०) 'शिकारी राजकुमार' (११) 'बलिदान' (१२) 'बोध' (१३) 'सच्चाई का उपहार', (१४) 'ज्वालामुखी' (१५) और 'महातीर्थ'। यह संग्रह भी खूब बिका।

प्रेमचन्द की पुस्तकों की माँग बढ़ती जा रही थी। हिन्दी पुस्तक एजेंसी ने जिसने 'सप्त सरोज' छापा था, प्रेमचन्द से शेख सादी पर एक पुस्तक लिखवा कर छापी। इसके पाठ से सादी की कविता और उनके चरित्र की महिमा का यथेष्ट ज्ञान हो सकता है।

इसी प्रकाशन संस्था ने प्रेमचन्द का एक उपन्यास भी प्रकाशित किया। यह उपन्यास पहले उर्दू में लिखा गया। इसका मूल नाम था—'बाजारे हुस्न'। परन्तु इसका हिन्दी रूपान्तर 'सेवा सदन' उर्दू संस्करण से कोई चार वर्ष पहले छपा। उपन्यास का आरम्भ १९१६ के अन्त में किया गया था। जनवरी १९१७ के एक पत्र में प्रेमचन्द जी ने निगम को लिखा—'आजकल एक किस्सा लिखते लिखते नावेल लिख चला। कोई सौ सफे तक पहुँच चुका हूँ। इसी वजह से छोटा किस्सा न लिख सका। अब इस नावेल में ऐसा जी लग गया है कि दूसरा काम करने को जी नहीं चाहता। मगर माच (मई) के लिए दो-तीन दिन में जरूर कुछ-न-कुछ भेजूँगा। फरवरी के लिए मजबूरी है। अगर आप इस नावेल को मुसलसल लेना चाहें तो कैसा हो? रिसाले की मौजूदा जखामत इस बोझ को नहीं सँभाल सकती। किस्सा दिलचस्प है और मुझे ऐसा ख्याल होता है कि मैं अब की बार नावेल-नवीसी में कामयाब हो सकूँगा।'

तीन महीने बाद २१ मार्च १९१७ को दूसरे खत में इलाहाबाद से लिखा—'मेरा नावेल चल रहा है। अब जरा इत्मीनान हो जाए तो खत्म करूँ। खूब हो रहा है। चाहता हूँ जल्द अंजाम की तरफ चलूँ।'

उसी समय के एक और पत्र में—'बाजारे हुस्न अलामुल मुसन्नफी का शिकार हो रहा है। अब कुछ दिनों में छोटे किस्से लिखना बन्द करके इसी मजमून लिखने की कोशिश करूँगा। किस्सा एक-आध का मुस्तकिल प्लाट नहीं समा सकता। एक वक्त में एक ही काम हो सकता है। या तो नावेल लिखूँ या कहानियाँ। नावेल में एक ही प्लाट काफी है। और इसका लिखना इतना मुश्किल नहीं जितना हर माह दो-तीन कहानियाँ लिखना।'

बाजारे हुस्न १९१७ के अन्त या १९१८ के आरम्भ में समाप्त हुआ। इसे उर्दू में प्रकाशन के सम्बन्ध में तो बहुत बातचीत ही चलती रही परन्तु उसी समय साथ में इसका हिन्दी रूपान्तर हिन्दी पुस्तक एजेंसी ने १९१८ में प्रकाशित किया। 'सेवा सदन' के लिए जनता में प्रेमचन्द का नाम भी प्रख्यात कर दिया।

हिन्दी पत्रों तथा समालोचकों ने सेवासदन का दिल खोलकर स्वागत किया। सरस्वती ने वेश्या-नृत्यादि बहुतेरी सामाजिक कुरीतियों का दिग्दर्शन वाली इस पुस्तक की भाषा को सरल कहा और लेखक की शैली को रोचक बतलाया। एक आलोचक कालिदास कपूर ने प्रेमचन्द से पूर्व के हिन्दी उपन्यास साहित्य की तुलना एक ऐसे उद्यान से की जिसमें सभी कुछ बाहर से मांगा हुआ था। संसार भर के भले-बुरे पौधे यहाँ मौजूद हैं। इधर देखिये तो बंगाली बंकिम और रवीन्द्र के साहित्य सुमनों की कलम है उधर गुजरात से लाई हुई सरस्वतीचन्द्र की बेल है। कहीं ह्यूगो और ड्यूमा के ऐतिहासिक उपन्यासों की कलम लगाने की कोशिश हो रही है। कहीं कुछ सज्जन अंग्रेजी साहित्य के दूबे रबर से वाटिका को सुशोभित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। एक आध कोने में छिपे हुए इने गिने साहित्य प्रेमी अपनी सच्ची साहित्य-सेवा का बीज बोते दिखाई देते हैं।

श्री कालिदास कपूर ने सामयिक हिन्दी उपन्यासों का जिक्र करते हुए कहा— परन्तु आशा की झलक दिखाई दे रही है। अच्छे उपन्यासों का आदर बढ़ता जाता है चाहे वे अनुवादित ही क्यों न हों। ऐसे समय में साहित्य सेवियों का यह धर्म है कि अच्छे उपन्यासों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करें और उनके लेखकों का उत्साह बढ़ाते रहें। इसी धर्म को यथाबुद्धि निबाहने के लिए आज हम पाठकों से सेवासदन का परिचय कराते हैं। श्रीयुत प्रेमचन्द की आख्यायिकाओं से तो वे परिचित ही होंगे। यह उन्हीं की लेखनी से निकला हुआ पहला उपन्यास है। इस लेख का अन्तिम पैराग्राफ इस प्रकार है— हम आशा करते हैं कि लेखक महाशय की लेखनी से और भी अच्छे-अच्छे उपन्यासों की सृष्टि होगी। ईश्वर करे वह समय शीघ्र आए जब हम यह कहने का सौभाग्य प्राप्त हो कि हिन्दी साहित्य में भी थैकरे डिकेंस स्कॉट और रवीन्द्र की कमी नहीं है।

सेवासदन की बहुत ख्याति हुई। भारत की दूसरी भाषाओं में भी इसके अनुवाद छपे। अब प्रेमचन्द ने अपने जलवाए ईसार (१९१२) का हिन्दी में अनुवाद किया और हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई से इसे वरदान के नाम से प्रकाशित करवाया। जलवाए ईसार' पर लेखक का नाम नवाबराय था परन्तु इसके हिन्दी रूपान्तर वरदान पर प्रेमचन्द नाम था।

जिस प्रकार आलोचकों को भ्रम हुआ था कि नवनिधि और प्रेम पूर्णिमा की कहानियाँ सप्त सरोज' की कहानियों के बाद लिखी गईं उसी तरह वर्तमान के समालोचकों ने भी सोचा कि वरदान में प्रेमचन्द की कला का ह्रास हुआ